# स्वदेशी पत्रिका

वर्ष–21, अंक–1, पौष–माघ 2069, जनवरी 2013

संपादक
**विक्रम उपाध्याय**

**कार्यालय**
धर्मक्षेत्र, सेक्टर–8, बाबू गेनू मार्ग रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022 से प्रकाशित
दूरभाष : 011–26184595
स्वदेशी जागरण समिति की ओर से ईश्वर दास महाजन द्वारा कॉम्पीटेंट बाइन्डर्स (प्रिंटिंग यूनिट), नवीन शाहदरा, दिल्ली–32 से मुद्रित।

## आवरण कथा–4

एक पूर्व प्रधानमंत्री ने कहा था कि यदि सरकार की ओर से 100 रूपये खर्च होते हैं तो वास्तविक लाभार्थी तक मात्र 15 रूपये ही पहुंचते हैं। देश में आमजन को सस्ता अनाज, किसान को सस्ता उर्वरक, सस्ते पेट्रोलियम उत्पाद जैसे पेट्रोल, डीजल, केरोसिन एवं एलपीजी सिलेण्डर....

कवर पेज

## अ नु क्र म

**आवरण कथा**
नकद लेकिन किसके लिए – डॉ. अश्विनी महाजन /4

**प्रतिक्रिया**
जोखिमों से परिपूर्ण 'कैश सब्सिडी योजना' – सीए सुरिन्द्र आनन्द /6

नकद सब्सिडी का कमजोर आधार – जयंतीलाल भण्डारी /7

**विचार–विमर्श**
64वें गणतंत्र दिवस पर विशेष – प्रभात झा /9

**अर्थव्यवस्था**
वैश्विक संकट में भारत की भूमिका – डॉ. भरत झुनझुनवाला /12

**चर्चा** : नया नहीं – लॉबिंग का खेल – देविन्दर शर्मा /15

**कृषि** : कृषि भूमि पर हो इनका हक – भारत डोगरा /17

**जनांदोलन** : निर्भया! तूने जगाया सोया भारत – डॉ. वेदप्रताप वैदिक /19

**सामयिकी** : आक्रोश से जगी उम्मीद – अवधेश कुमार /22

**गरीबी**
जो सो रहे हैं गरीबी ओढ़कर – अभिषेक रंजन सिंह /25

ठण्ड से ठिठुरते बेघर लोग – उमाशंकर मिश्र /27

**पर्यावरण**
महानगर में बढ़ता प्रदूषण – जवाहरलाल कौल /28

**मुद्दा**
कैसे बनेगा भावी भारत? – निरंकार सिंह /31

**रपट** : स्वदेशी मेला जोधपुर /34

**पाठकनामा / 2, रपट / 34**

## पाठकनामा

### देशहित में समस्त नागरिकों से विनम्र निवेदन

भारत विश्व का एक महान राष्ट्र है। हमारा संविधान विशाल है परंतु अनेक ऐसे कानून है जो बदलने चाहिए। कानूनी व्यवस्था में अनेक खामियाँ हैं जिनके कारण भ्रष्टाचार तथा काला धन बढ़ता जा रहा है। अन्याय शोषण कुपोषण आदि अनेक समस्याएं हल नहीं हो रही है। यह संसद, सरकार, विधानसभाएं अक्षम सिद्ध हो रही हैं। वोट बैंक की राजनीति एकता, समता, समभाव, सद्भाव में खलल कर रही है। न्याय, प्रेम, ईमानदारी खत्म हो रही है। क्षेत्रवाद, जात–पात, वर्गभेद बढ़ रहा है। देश की एकता खतरे में है। मात्र कुछ पूंजीपति, सामंती, सत्ताधारी, मठाधीश, नौकरशाह मिली भगत करके पूरे लोकतंत्र पर हावी हो गए हैं। उसमें भी मात्र कुछ प्रतिशत लोग धन–बल, बाहुबल के सहारे दबंग नेतागिरी कर रहे हैं। देश की 90 प्रतिशत जनता हतास परेशान व लाचार हो गई हैं। देश में 76 प्रतिशत मात्र 20 रुपए हर रोज में गुजारा करते हैं, आधी जनता घोर गरीबी से ग्रस्त हैं, अनेक समस्याएं हैं, हम चुनावों में वोट देकर सांसद चुनते हैं, उनमें कुछ नेता मंत्री बनते हैं। ये सब जनता द्वारा तथा जनता के लिए होते हैं पर करते हैं – मनमर्जी। कानून और पुलिस का संरक्षण इनको प्राप्त है। जनता वोट देकर लाचार हो जाती है, इसका विकल्प विकेन्द्रीयकरण ही है। एकाधिकार, साम्राज्यवाद, पूंजीवाद, विदेशी कंपनियों, कारपोरेट घरानों से देश का भला होने वाला नहीं है। अपने हाथ जगन्नाथ। हम अपने लिए स्थाई विकल्प तैयार करें, उसके लिए हम 5 सूत्री समाधान बता रहे हैं – (1) जन लोकपाल, (2) आम जनसभा (राष्ट्रीय पंचायत), (3) देशभक्त सेना, (4) आमजन की सीबीआई तथा (5) जिला स्तर पर समाधान एजेन्सीज की स्थापना।

**– डॉ. सुरेश अग्रवाल, बैजाड़ रोड, खोरा बीसल (74–बी कृष्णा नगर) जयपुर, राजस्थान**

### कब बचाएंगे अपनी धरोहर – गाय और गंगा माँ को

स्वदेशी पत्रिका का मैं नियमित पाठक हूँ इसके अतिरिक्त कई पत्र–पत्रिकाएं भी पढ़ता रहता हूँ। हिंदुत्व की रक्षा करने वाली हर पत्रिका में गाय का जिक्र किया जाता है परंतु मेरे हिसाब से आज भी दिल्ली की अनेक सड़कों में गाय घूमती मिल जाएंगी। अगर देखा जाए तो आज गाय और गंगा माँ की रक्षा करने का दायित्व कोई भी नहीं निभा रहा है। गंगा में प्रदूषण प्रति दिन बढ़ता ही जा रहा है साथ ही हमारी गायें सड़क पर पड़े कचरा और पॉलीथिन खाने के लिए लोगों ने छोड़ दी है। इन आवारा गायों को छोड़ने वाले ज्यातदर हिन्दू ही हैं। गायों को छोड़ने के दो कारण हैं। पहला, जब तक गाय दूध देती है तब तक लोग उसे पालते हैं और जैसी ही गाय दूध देना बन्द कर देती है तो उसे सड़कों पर आवारा छोड़ दिया जाता है। दूसरा, लोगों में गाय के दूध को भैंस के दूध से पतला माना जाता है। कुछ गृहिणी महिलाओं के अनुसार चाय ठीक नहीं बनती है और चाय का स्वाद अजीब रहता है। इन दोनों कारणों को मैंने कई महिलाएं और कई लोगों से सुना भी है। परंतु कितने दुख की बात है जिस देश में गाय को 'कामधेनु गाय' माना जाता है उसी देश में गाय की कोई कद्र नहीं। आज भी भारत में कई जगह गायों को मारने वाले कसाई लोग बैठे हुए हैं। सरकार भी केवल आश्वासन देती है लेकिन कुछ करती नहीं। जरूरत है हिन्दुत्व की रक्षा करने वाले संगठन आगे आए। दिल्ली क्या देशभर में कहीं भी आवारा गाय घूम रही गाय को 'गौशाला' भेजने का काम करें। हिन्दू संगठनों को अब आगे आकर गंगा और गाय माता को बचाने का काम शीघ्र से शीघ्र करना चाहिए। **– राम प्रसाद रायल (अध्यापक), ग्राम पोस्ट : नसौगी, टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड**

**आवश्यक नहीं कि इस अंक के भीतर प्रस्तुत लेखकों के विचार स्वदेशी पत्रिका के संपादक मंडल के विचारों से मेल खाते हों। पाठकों की जानकारी के लिए उन्हें यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।**


### संपादकीय कार्यालय

**''धर्मक्षेत्र'' शिव शक्ति मन्दिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022**

**दूरभाष : 011–26184595 • ई–मेल : swadeshipatrika@rediffmail.com**

**अगर आप घर बैठे स्वदेशी पत्रिका चाहते हैं तो डिमांड ड्राफ्ट, मनीऑर्डर अथवा चेक द्वारा शुल्क *'स्वदेशी पत्रिका'* दिल्ली के नाम भेजने का कष्ट करें।**

**वार्षिक सदस्यता शुल्क : 100 रुपए**

**आजीवन सदस्यता शुल्कः 1,000 रुपए**

यदि शुल्क भेजने के उपरांत भी आपको पत्रिका समय पर उपलब्ध नहीं हो पा रही है तो तुरंत पत्रिका कार्यालय को सूचित करें।

(ध्यानार्थ : कृपया अपना नाम व पता साफ अक्षरों में लिखें)


## उन्होंने कहा

नकद सब्सिडी योजना के लिए इस्तेमाल किया गया नारा आपका पैसा आपके हाथ वर्ष 2014 आम चुनाव को ध्यान में रखकर लोगों को दी जाने वाली घूस जैसा लगता है।

**– सीताराम येचुरी**

महिला सुरक्षा को लेकर पूरा देश आक्रोशित है, लेकिन सरकार अब भी कुंभकर्ण की नींद सोई हुई है। जन प्रतिनिधियों से बातचीत करने के लिए उसके पास समय नहीं है।

**– शाहनवाज हुसैन**

राजीव गांधी पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने गंगा की सफाई की परियोजना शुरू की। और मौजूदा कांग्रेस नीत सरकार ने गंगा की सफाई की जरूरत पर ध्यान नहीं दिया है।

**– लालकृष्ण आडवाणी**

खुदरा बाजार में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश पर लगे रोक।

**– चौधरी राकेश टिकैत**

संविधान में एक बराबर दर्जा और एक समान अवसर की बात कही गई है। लेकिन दुखद है जब भी महिलाओं की सुरक्षा और गरिमा की बात आती है, न्यायपालिका संविधान का अनुसरण नहीं करती।

**– अशोक कुमार गांगुली, पूर्व न्यायाधीश**

पाकिस्तान की सेना नहीं चाहती कि भारत के साथ अच्छे संबंध कायम हों। पाक सेना अपने वर्चस्व को बनाए रखने के लिए यह सब कर रही है। जबकि दोनों देशों के नागरिक चाहते हैं कि आपसी संबंध मधुर हों।

**– गुलाम नबी आजाद**

संपादकीय

# बहुराष्ट्रीय कंपनियों को मात देता पारंपरिक व्यवसाय

शापिंग मॉल और विदेशी वस्तुओं की बिक्री को देश के आर्थिक उत्थान का पहिया बताने वालों के लिए भले ही एक खबर है, पर है महत्वपूर्ण! देश के प्रमुख औद्योगिक संगठन एसोचैम ने एक अध्ययन के जरिए यह बताया है कि इलाहाबाद में आयोजित महाकुंभ के दो महीने के समय में 12 हजार से 15 हजार करोड़ रुपये के व्यवसाय होने का अनुमान है। इस व्यवसाय में होटल और एयरवेज कंपनियों के अलावा बड़ी संख्या में स्थानीय लोग और व्यापारी लाभान्वित होने वाले हैं। एसोचैम का यह भी मानना है कि कम से कम 80 हजार स्थानीय लोगों को कुंभ से रोजगार प्राप्त हो सकता है। संभवतः यह खबर आज के अर्थशास्त्रियों को ना लुभाए, वे इसे बकवास भी करार दे सकते हैं। पर इतिहास गवाह है कि प्राचीन से लेकर आधुनिक भारत में मेले का अर्थशास्त्र आज के अतिआधुनिक और संगठित उपभोक्ता व्यवसाय से ज्यादा सुदृढ़ और सबको बराबर अवसर देने वाला है। भले ही कालचक्र ने इन मेले का महत्व कमकर दिया हो, पर इनकी उपयोगिता आज भी बरकरार है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में मेला और त्योहार आधरित व्यावसायिक उपक्रम आज भी चल रहे हैं और वर्ष में दो चार बार ही सही पर आर्थिक कमाई के अवसर ग्रामीणों को ये मेले जरूर प्रदान कर रहे हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये मेले सिर्फ ग्रामीण अर्थव्यवस्था को संभाले हुए हैं, बल्कि ये परंपरा और धार्मिक संस्कारों को भी बचाए हुए हैं। उपभोग उत्पादों की जितनी विविधता भारतीय पारंपरिक मेले में मिलती हैं, उतनी दुनिया के किसी स्टोर में नहीं मिल सकती चाहे वह वॉलमार्ट ही क्यों नहीं। यह अजीब विरोधभाष है कि शापिंग मॉल या विदेशी स्टोरों में उपभोक्ताओ ंको वस्तुओं की कीमत के हिसाब से अपने बजट बनाने पड़ते हैं, जबकि भारतीय पारंपरिक मेलों में उपभोक्ता के बजट के भीतर उत्पाद मिलते हैं। आपके मॉल में या बड़े स्टोर में एक रुपये का नोट नहीं चलेगा पर आज भी पारंपरिक मेलों या त्योहारों में सजी दुकानों में एक रुपये की कीमत की आपकी चीज मिल जाएगी। पर फिर भी सरकारों ने मेलों के प्रति उदासीनता बनाए रखी और मॉल या बड़े स्टोरों का स्वागत करते नजर आए। दो चार प्रतिशत अमीर उपभोक्ताओं की जरूरत के लिए 80 फीसदी गरीबों के अवसर मारते नजर आएं। बड़े मॉल या बहुराष्ट्रीय कंपनियों के स्टोर हमारे लिए नई जरूरते पैदा कर हमारी बचत को नष्ट करते हैं, जबकि हमारे पारंपरिक मेले उपभोक्ताओं की जरूरतें उनके सीमित आय के भीतर ही पूरा करते हैं। दाल पकाने के लिए 2500 रुपये के कुकर की आवश्यकता मॉल पैदा करते हैं, पर गांव या पारंपरिक मेले ढ़ाई रुपये की मिट्टी की हांडी उसी दाल को स्वाद के साथ पकाने का विकल्प उपलब्ध कराते हैं। शहरों में लोग विंडों शापिंग के लिए भी हजार दो हजार रुपये खर्च करने को विवश होते हैं पर पारंपरिक मेले मनोरंजन भी मुफ्त में कराते हैं। हर हाथ को काम और काम का उचित दाम का सिद्धांत अगर अक्षरसः पालन होते देखना है तो इन्हीं मेले में जाइए। व्यवसाय के साथ जुड़ी जाति व्यवस्था अगर बची है तो इन्हीं मेले और आयोजनों के कारण। लोहार, कुम्हार, सुनार, बढ़ई और चर्मकार एक साथ बैठकर व्यवसाय करते हैं और कहीं किसी के साथ गलाकट प्रतिस्पर्धा या वैमनस्य नहीं है। आधुनिक अर्थव्यवस्था के नए समर्थकों के लिए यह सब अजूबा हो सकता है। पर सच्चाई है कि भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ परंपराओं पर आधारित ये मेले ही हैं। यह भी सही है कि भारतीय उद्योग या व्यवसाय का जो आकार है इन मेलों या त्योहारों में उन्हें मेले या त्योहारों में नहीं समाया जा सकता। उनके लिए बड़े शोरूम और बड़े शापिंग मॉल जरूरत है ही। पर प्रश्न यह है कि इन जरूरतों के लिए इन ग्रामीण हाटों–बाजारों, त्योहार आधारित मेलों को क्यों मारा जा रहा है। जितनी तेजी से शहरीकरण हो रहा है। बेवजह हजारों करोड़ों के निवेश से अनावश्क मॉल या बिजनेस सेंटर बनाए जा रहे हैं। यदि उनके अंश के बराबर की पूंजी ग्रामीण आर्थिक ढांचे पर खर्च किया जाए। बिजली पानी और समुचित सड़क मुहैया कराया जाए। तो ग्रामीण अर्थव्यवस्था भारतीय अर्थव्यवस्था में योगदान शुरू कर सकती है। यदि इलाहाबाद के कुंभ में दो महीने के दौरान 12 हजार से 15 हजार करोड़ रुपये का व्यवसाय हो सकता है तो और भी जगह भी हो सकता है। और इतना बड़ा व्यवसाय किसी बहुराष्ट्रीय कंपनी के प्रचार प्रसार से नहीं, बल्कि आस्था और परंपरा से ही इतने कम समय में हो सकता है। देश का शायद ही कोई ऐसा राज्य हो जहां ऐतिहासिक रूप से मेले या त्योहारों का आयोजन नहीं होता, जरूरत है इन मेले को कुंभ के बराबर प्रचार प्रसार करने की। घरेलू पर्यटन उद्योग को बढ़ावा देकर देसी उद्योग धंधों को उससे जोड़ने की। न तो इसमें किसी प्रकार की जोखिम है और न करोड़ों रुपये की बरबादी। वे लोग जो मॉल संस्कृति को विकास के लिए जरूरी बताते हैं, उनके लिए यह जानना जरूरी है कि भारत समेत दुनिया के लगभग सभी देशों में उपभोक्ता वस्तुओं के व्यवसाय से जुड़ी कंपनियों अपने ढ़ांचे पर होने वाले व्यय से ही परेशान है और कर्जदार भी। पर देसी हाट और मेले रूपी बाजार में हर आदमी कमाकर कम पैसे में अपने लिए उत्पाद लेकर ही जाता है। गंवाता कुछ भी नहीं है।

# नकद लेकिन किसके लिए

**सब्सिडी के नकद अंतरण के लिए नागरिकता प्रमाण पत्र की अनिवार्यता हो। यही नहीं आज हमारे देश में गरीबों की सही पहचान भी नहीं हो पा रही है। ऐसे में गरीबों के लिए आवंटित राशि का लाभ उन तक नहीं पहुंच पाता है। सब्सिडी के नकद अंतरण के लिए जल्दबाजी के चलते गरीब की पहचान का मुद्दा भुला दिया गया है, जो दुर्भाग्यपूर्ण है।**

■ डॉ. अश्विनी महाजन

एक पूर्व प्रधानमंत्री ने कहा था कि यदि सरकार की ओर से 100 रूपये खर्च होते हैं तो वास्तविक लाभार्थी तक मात्र 15 रूपये ही पहुंचते हैं। देश में आमजन को सस्ता अनाज, किसान को सस्ता उर्वरक, सस्ते पेट्रोलियम उत्पाद जैसे पेट्रोल, डीजल, केरोसिन एवं एलपीजी सिलेण्डर आदि उपलब्ध कराने हेतु सरकार को अलग–अलग प्रकार की सब्सिडी का प्रावधान बजट में करना होता है। पिछले वर्षों में यह सब्सिडी लगातार बढ़ती ही जा रही है। वर्ष 2002–03 में केन्द्र सरकार द्वारा कुल 43533 करोड़ रूपये की सब्सिडी दी गई, जो वर्ष 2011–12 तक आते–आते 2,16,297 करोड़ रूपये तक पहुंच गई। इस सब्सिडी में मुख्य हिस्सा (72,823 करोड़ रूपये) खाद्य सब्सिडी का था।

ऐसा माना जाता है कि गरीबों के लिए दी जाने वाली सब्सिडी आमतौर पर सही गंतव्य पर नहीं पहुंच पाती और रास्ते में ही गबन हो जाती है। यही नहीं सब्सिडी को सही जगह पहुंचाने के लिए सरकार को भारी खर्च करना पड़ता है। योजना आयोग के एक अनुमान के अनुसार सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से एक रूपए की सब्सिडी को पहुंचाने के लिए सरकार को 4 रूपए तक खर्च करने पड़ते हैं।

इसके अलावा कुछ अर्थशास्त्रियों का यह मानना है कि हालांकि गरीबों को सस्ता खाना, ईंधन और किसानों को खाद दिलाना जरूरी है, लेकिन सब्सिडी की नीति सही नहीं है। उनका कहना है सब्सिडी देने से वस्तुओं की कीमतें कम हो जाती हैं। कीमत कम होने से लोग उस वस्तु का अधिक उपयोग करने लगते है। सामान्यतः जिन वस्तुओं पर सब्सिडी दी जाती है वे ऐसी वस्तुएं होती हैं जिनकी कमी होती है। उदाहरण के लिए पेट्रोलियम उत्पादों के लिए हम विदेशों पर निर्भर करते हैं। उनकी कीमतें भी बढ़ती जा रही हैं, ऐसे में डीजल जैसी वस्तुओं पर सब्सिडी देने के कारण लोग इनका अनुचित इस्तेमाल भी करते हैं, जिसके कारण सरकार पर सब्सिडी का बोझ तो बढ़ता ही है, साथ ही विदेशों पर हमारी निर्भरता भी बढ़ जाती है।

आज खाद्य सब्सिडी का अधिकाधिक उपयोग खाद्य पदार्थों के भंडारण और सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर होता है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली की बदहाली किसी से छुपी नहीं है। 60 हजार करोड़ रूपये से भी अधिक भारी सब्सिडी देने के बावजूद आज सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से भी आमजन को अच्छा अनाज और चीनी बाजार से बहुत कम कीमत पर नहीं मिल पाती। यदि प्रत्येक बीपीएल उपभोक्ता को 1000 रूपये की

**देश में रहने वाला कोई भी व्यक्ति अपना आधार कार्ड बनवा सकता है, इसके लिए देश की नागरिकता का कोई प्रमाण नहीं देना पड़ता। पड़ोस में बंगलादेश से बड़ी संख्या में लोग सीमा पार कर भारत में बस रहे हैं। बंगलादेश में भारी गरीबी के चलते यह प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। ऐसे में आधार कार्ड के आधार पर नकद सब्सिडी के अंतरण का लाभ भारत के नागरिकों के साथ–साथ विदेशियों को भी मिल सकता है। राजस्व का एक बड़ा हिस्सा इस प्रकार से देश के वास्तविक गरीबों को नहीं पहुंच पायेगा।**

नगद सब्सिडी प्रति वर्ष दी जाए तो भी वह बाजार से वस्तु खरीद कर महंगी कीमत की भरपाई कर पायेगा और यदि देश में 40 करोड़ बीपीएल उपभोक्ता हों तो भी कुल सब्सिडी 40 हजार करोड़ रूपये की होगी और गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों का कुछ भला हो पायेगा।

ऐसा होने पर नकद सब्सिडी देने का विचार कुछ वर्ष पूर्व अव्यवहारिक लगता था। लेकिन आज समय बदल गया है। सूचना प्रौद्योगिकी के युग में प्रत्यक्ष नकद अंतरण कोई कठिन काम नहीं रहा। कई स्थानों पर आज रोजगार गारंटी योजना के तहत मजदूरी बैंक खाते में सीधे भेजना संभव है, विधवाओं एवं बुर्जुगों को पेंशन की राशि प्रत्यक्ष बैंक में अंतरित कर दी जाती है। यही नहीं लाखों बीपीएल लोगों को स्वास्थ्य बीमा का लाभ स्मार्ट कार्ड के माध्यम से पहुंच रहा है। ऐसे में जरूरतमंद लोगों को नकद सब्सिडी का अंतरण सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हुए बैंकिंग प्रक्रिया के अंर्तगत संभव हो चुका है। ऐसे में जरूरत है तो राजनीतिक इच्छा शक्ति की। यदि सरकार मन बना ले तो इन व्यवस्थाओं का निर्माण करना कठिन नहीं होगा।

इस प्रकार सैद्धांतिक रूप से सरकारी ताम–झाम से बचते हुए नकद सब्सिडी देना एक सही कदम हो सकता है। यूआईडी अथॉरिटी ऑफ इंडिया ने इस संबंध में एक रपट भी वित्त मंत्री को सौंपी थी। अथॉरिटी का कहना है कि आधार योजना के तहत जो यूआईडी क्रमांक दिया जायेगा, उसके तहत सब्सिडी को बैंक, एटीएम और यहां तक कि मोबाईल बैंकिग के माध्यम से भी राशि अंतरित की जा सकेगी। किसी हेरा फेरी की सूरत में इस व्यवस्था के अंतर्गत लाभार्थी सरकार को प्रत्यक्ष रूप से शिकायत भी दर्ज करा सकेंगे।

अथॉरिटी ने सरकार को इस योजना के क्रियान्वन के लिए योजना भी बना कर दी, जिसके आधार पर तमिलनाडु, असम, महाराष्ट्र, दिल्ली, ओडिसा और राजस्थान सहित 7 राज्यों में प्रत्यक्ष सब्सिडी की पॉयलेट योजना भी बनी। इस पॉयलट योजना के राजस्थान के अलवर जिला में आए अनुभवों को सरकार की नकद सब्सिडी योजना के अंतिम प्रारूप में शामिल किया गया है। सब्सिडी युक्त वस्तुओं में भ्रष्टाचार और रिसाव को रोकने हेतु सरकार ने सब्सिडियों के लाभार्थियों को प्रत्यक्ष नकद अंतरित करने की एक महत्वाकांक्षी योजना बनाई है, जिसे समयबद्ध रूप से देश के एक चौथाई गृहस्थों को शामिल करते हुए लागू करने हेतु एक समिति का भी गठन प्रधानमंत्री द्वारा किया गया है।

## आधी अधूरी है यह सरकारी योजना

अभी तक केवल वृद्धावस्था पेंशन, नरेगा मजदूरी और केरोसीन समेत सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत वितरित होने वाली सब्सिडी युक्त वस्तुओं के बदले में नकद अंतरित करने की योजना की बात चल रही है। गौरतलब है कि सरकार की सब्सिडी केवल खाद्य वस्तुओं तक सीमित नहीं है। पेट्रोलियम उत्पाद और उर्वरक इस सब्सिडी के अन्य अत्यधिक महत्वपूर्ण हिस्से हैं, लेकिन अभी सरकार इन सब्सिडियों को समाप्त करते हुए, नकद अंतरित करने की बात नहीं सोच पाई है, हालांकि इस संबंध में टास्क फोर्स ने जून 2011 में ही रिपोर्ट सरकार को सौंप दी थी। पेट्रोलियम सब्सिडी में सर्वाधिक सब्सिडी एलपीजी, डीजल और केरोसिन पर दी जाती है।

सरकार ने केरोसिन सब्सिडी को नकद देने के संबंध में फैसला किया है और हाल ही में सरकार ने एलपीजी के सब्सिडी युक्त सिलेंडरों की संख्या प्रति गृहस्थ 6 सिलेंडर करने का फैसला लिया है। डीजल पर अभी भी भारी सब्सिडी दी जा रही है, जिसके चलते डीजल सब्सिडी का दुरूपयोग लग्जरी कारों में बढ़ रहा है। लेकिन डीजल सब्सिडी को समाप्त करते हुए, उसे नकद रूप में देने की सरकार की अभी भी कोई योजना नहीं है। उधर रसायनिक उर्वरकों पर भी भारी सब्सिडी सरकार द्वारा कंपनियों के माध्यम से दी जा रही है। हालांकि किसान को प्रत्यक्ष सब्सिडी देने की बात बहुत समय से चल रही है, फिर भी किसान को प्रत्यक्ष सब्सिडी देने की भी कोई ठोस योजना नहीं बनी है।

## आधार नहीं है सही तरीका

नकद सब्सिडी देने की पूरी योजना आधार कार्ड पर आधारित है। आधार योजना कुछ समय पहले शुरू की गई थी और उसके लिए यूआईडी अथॉरिटी का निर्माण भी किया गया। आधार कार्ड बनाने का जिम्मा कुछ संस्थाओं और कंपनियों को सौपा गया। देश में रहने वाला कोई भी व्यक्ति अपना आधार कार्ड बनवा सकता है, इसके लिए देश की नागरिकता का कोई प्रमाण नहीं देना पड़ता। पड़ोस में बंगलादेश से बड़ी संख्या में लोग सीमा पार कर भारत में बस रहे हैं। बंगलादेश में भारी गरीबी के चलते यह प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। ऐसे में आधार कार्ड के आधार पर नकद सब्सिडी के अंतरण का लाभ भारत के नागरिकों के साथ–साथ विदेशियों को भी मिल सकता है। राजस्व का एक बड़ा हिस्सा इस प्रकार से देश के वास्तविक गरीबों को नहीं पहुंच पायेगा।

जरूरी है कि सब्सिडी के नकद अंतरण के लिए नागरिकता प्रमाण पत्र की अनिवार्यता हो। यही नहीं आज हमारे देश में गरीबों की सही पहचान भी नहीं हो पा रही है। ऐसे में गरीबों के लिए आवंटित राशि का लाभ उन तक नहीं पहुंच पाता है। सब्सिडी के नकद अंतरण के लिए जल्दबाजी के चलते गरीब की पहचान का मुद्दा भुला दिया गया है, जो दुर्भाग्यपूर्ण है। ❑

**प्रतिक्रिया**

# जोखिमों से परिपूर्ण 'कैश सब्सिडी योजना'

**कैश सब्सिडी योजना से जब एक बार पैसा लाभार्थी के खाते में चला जाता है तो लाभार्थी उसे अपनी मनमर्जी से किसी भी प्रकार और किसी भी उद्देश्य से खर्च सकता है। सरकार का कोई नियंत्रण नहीं रहता और ऐसे में सब्सिडी देने का मूल उद्देश्य ही समाप्त हो जाएगा। उदाहरणतः यदि खाद्य पदार्थों पर सब्सिडी देने का मूल उद्देश्य इसके पात्रों को सही पोषण देकर स्वस्थ बनाना है तो यह उद्देश्य ही नष्ट हो जाएगा अगर लाभार्थी पैसे का इस्तेमाल कहीं और करता है।**

■ सीए सुरिन्द्र आनंद

'आपका पैसा आपके हाथ' एक कर्णप्रिय राजनीतिक नारे जैसे लगता है। सरकार अति उत्साह में यह जो कैश सब्सिडी योजना 2013 के शुभारंभ से प्रारंभ करने के दावे कर रही है, वास्तव में बहुत ही अनिश्चित, कठिनाइयों एवं जोखिमों से परिपूर्ण एक अपरिपक्व योजना है, जिसे हर मोर्चे पर बुरी तरह घिरी हुई विफल केन्द्र की यूपीए सरकार आम आदमी का ध्यान भीषण भ्रष्टाचार, महाघोटालों, कमरतोड़ महंगाई एवं विवादास्पद आर्थिक व अन्य नाकाम नीतियों से हटाकर उसे सब्सिडी रूपी रिश्वत नकद देकर अपना खोया हुआ जनाधार पुनः प्राप्त करने के उत्तम विकल्प के रूप में देख रही है।

केन्द्र की यूपीए सरकार के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह, वित्तमंत्री पी. चिदम्बरम, केन्द्रीय ग्रामीण विकास मंत्री जयराम रमेश सरीखे सभी कांग्रेसी नेता सुर से सुर मिलाकर दावे कर रहे हैं कि कैश सब्सिडी योजना के अंतर्गत विभिन्न मंत्रालयों द्वारा 42 लोक भलाई स्कीमों जैसे मुख्यतः खाद्य पदार्थों पर दी जाने वाली सब्सिडी, उर्वरक एवं खादों इत्यादि पर विभिन्न विभागों द्वारा दी जाने वाली सब्सिडियों, पैट्रोलियम, डीजल, गैस इत्यादि और पैंशन पर दी जाने वाली सब्सिडियां अब सीधे ही पैसे के रूप में लाभार्थियों के बैंक खातों में जमा कर दी जाएंगी। जिससे उपरोक्त सब्सिडियों के सरकार से उपयुक्त पात्रों को हस्तांतरण के दौरान बिचौलियों द्वारा की जाने वाली गड़बड़ियों पर अंकुश लगाया जा सकेगा और सब्सिडी का पैसा अविलंब उपयुक्त पात्र तक पहुंच जाएगा।

**सरकार जो आधार कार्ड के आधार पर उपयुक्त पात्र को चिन्हित करने की कपोल कल्पना पाले हुए है, वह समझ से परे है, क्योंकि आधार कार्ड केवल व्यक्ति विशेष एवं उसके पते को चिन्हित कर सकता है, सब्सिडी के उपयुक्त पात्र को नहीं। गरीब उपयुक्त पात्रों को सिर्फ सरकारी मशीनरी ही चिन्हित कर सकती है, आधार कार्ड नहीं। अगर उपयुक्त पात्र को चिन्हित ही नहीं किया जा सकता तो सारी योजना ही पटरी से उतर जाएगी।**

प्रारंभ में यह योजना 42 में से 28 स्कीमों पर लागू की जाएगी और वर्ष 2013 पर सरकार देश के 15 प्रांतों आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, राजस्थान, त्रिपुरा, हरियाणा, केरल, सिक्किम समेत वे राज्य जहां आधार कार्ड बनाने का कार्य लगभग 80 प्रतिशत तक पूरा हो चुका है, के लगभग 51 जिलों में कैश सब्सिडी योजना लागू कर महंगाई से त्रस्त गरीब जनता को वर्ष 2013 के आगमन का तोहफा और दावा कर रही है कि इससे भ्रष्टाचार पर

तो अंकुश लगेगा ही साथ ही साथ 'प्रत्येक परिवार का एक बैंक खाता' की कल्पना भी साकार होगी।

वहीं विपक्षी पार्टियां इस योजना को मध्यावधि चुनावों से भयभीत सरकार की 'कैश फॉर वोट नीति' करार दे रही हैं। आर्थिक विषयों से जुड़ा एक बुद्धिजीवी वर्ग भी इस योजना को अव्यावहारिक, असुरक्षित एवं कठिनाइयों से भरी मानकर सरकार को इस विषय पर संभल कर चलने की सलाह दे रहा है।

वास्तव में वर्तमान संदर्भ में देश का आधारभूत ढांचा ऐसी किसी भी योजना को लागू करने की स्थिति में नहीं है, क्योंकि देश के करोड़ों लोग व परिवार जो सब्सिडियों के उपयुक्त पात्र एवं लाभार्थी हैं, वे इतने गरीब, दबे–कुचले हैं कि उनमें से असंख्यों ने तो शायद आज तक बैंक देखा भी न हो और हिन्दुस्तान की अधिकतम गरीब जनसंख्या ग्रामीण व पिछड़े क्षेत्रों में ही रहती है, जहां बैंकों की शाखाओं का विस्तार भी नहीं हुआ है। ऐसे में यह स्कीम भ्रष्टाचार की ही भेंट चढ़ेगी, क्योंकि बैंक खाता खोलने से लेकर बैंक खाते से पैसे निकालने तक सब्सिडी की उपयुक्त गरीब जनता बिचौलियों पर ही निर्भर रहेगी जो उनको लूटते रहेंगे। मनरेगा में भी ऐसी बातें घटित हो रही है।

वर्तमान में जन वितरण प्रणाली (पब्लिक डिस्ट्रीब्यूशनस सिस्टम) जो वर्षों से हमारे देश में चल रही है, इस कैश सब्सिडी योजना के आने से ध्वस्त हो जाएगी। दूसरा, जन वितरण प्रणाली न्यूनतम समर्थन मूल्य से भी जुड़ी हुई है और जब कृषि प्रधान देश के किसानों से सरकार न्यूनतम समर्थन मूल्य पर उपज खरीदती है तो उसके वितरण के लिए जन वितरण प्रणाली की प्रासंगिकता को झुठलाया नहीं जा सकता।

सबसे कठिन एवं जोखिम भरा कार्य है उपयुक्त लाभार्थी जो वास्तव में इन सब्सिडियों का हकदार है, को चिन्हित करना। सरकार जो आधार कार्ड के आधार पर उपयुक्त पात्र को चिन्हित करने की कपोल कल्पना पाले हुए है, वह समझ से परे है, क्योंकि आधार कार्ड केवल व्यक्ति विशेष एवं उसके पते को चिन्हित कर सकता है, सब्सिडी के उपयुक्त पात्र को नहीं। गरीब उपयुक्त पात्रों को सिर्फ सरकारी मशीनरी ही चिन्हित कर सकती है, आधार कार्ड नहीं। अगर उपयुक्त पात्र को चिन्हित ही नहीं किया जा सकता तो सारी योजना ही पटरी से उतर जाएगी।

अगर अविलंब पैसे का हस्तांतरण बिचौलियों के हस्तक्षेप के बिना ही किसी मूल योजना का उद्देश्य हो तो शायद यह योजना कुछ कारगर सिद्ध हो सके परंतु सब्सिडी देने का मूल उद्देश्य पैसे का हस्तांतरण मात्र नहीं है। कैश सब्सिडी योजना से जब एक बार पैसा लाभार्थी के खाते में चला जाता है तो लाभार्थी उसे अपनी मनमर्जी से किसी भी प्रकार और किसी भी उद्देश्य से खर्च सकता है। सरकार का कोई नियंत्रण नहीं रहता और ऐसे में सब्सिडी देने का मूल उद्देश्य ही समाप्त हो जाएगा। उदाहरणतः यदि खाद्य पदार्थों पर सब्सिडी देने का मूल उद्देश्य इसके पात्रों को सही पोषण देकर स्वस्थ बनाना है तो यह उद्देश्य ही नष्ट हो जाएगा अगर लाभार्थी पैसे का इस्तेमाल कहीं और करता है।

जहां इस योजना के लागू हो जाने के पश्चात जन वितरण प्रणाली तहस–नहस होगी, वहीं सरकारें धीरे–धीरे लोगों के प्रति जिम्मेदारियों से भागना शुरू करेंगी और पिछले दरवाजे से इन सब्सिडियों में कटौती करना सरकारों के लिए आसान हो जाएगा तथा देश की वर्तमान परिस्थितियों में अति निर्धन दबे–कुचले लोग जो करोड़ों की संख्या में हैं और इसी सब्सिडी रूपी ऑक्सीजन पर जैसे–तैसे निर्वाह कर रहे हैं, की ऑक्सीजन में कटौती बहुत ही घातक सिद्ध हो सकती है।

वर्तमान हालात में उपयुक्त उपाय है सरकारी मशीनरी को चुस्त–दुरुस्त कर भ्रष्टाचार से मुक्त करना और बेलगाम बढ़ रही कमरतोड़ महंगाई पर अंकुश लगाना न कि राजनीतिक उद्देश्य से प्रेरित होकर महंगाई और भ्रष्टाचार से जूझ रहे आम आदमी को ऐसी अव्यावहारिक स्कीमों का प्रलोभन देकर उसका ध्यान व्यावहारिक मुद्दों से भटकाना। ❑

# नकद सब्सिडी का कमजोर आधार

**आशंका यह भी है कि सब्सिडी नकद रूप में प्राप्त करने के बाद यह जरूरी नहीं है कि उस पैसे का उपयोग उसी कार्य के लिए किया जाए, जिसके लिए अनुदान दिया गया है। परिवारों का मुखिया प्राप्त नकदी को जरूरी कामों के बजाय नशे, जुए तथा सामाजिक कुरीतियों जैसे कार्यों में खर्च कर सकता है। चूंकि अब भी बड़ी संख्या में ग्रामीण अशिक्षित हैं और वे सरकारी तंत्र से निपट पाने में सक्षम नहीं हैं।**

■ जयंतीलाल भंडारी

देश में नीतिगत आर्थिक सुधारों के तहत सब्सिडी के दुरुपयोग को रोकने के लिए केंद्र सरकार द्वारा जनवरी से देश के 15 राज्यों के 51 जिलों में 'आपका पैसा आपके हाथ' यानी नकद सब्सिडी (कैश सब्सिडी) की योजना प्रायोगिक रूप से शुरू की जा रही है। इस योजना को एक अप्रैल, 2014 से पूरे देश में लागू करने का लक्ष्य रखा गया है। इसके तहत रसोई गैस, मिट्टी का तेल, छात्रवृत्ति, मनरेगा की मजदूरी और कमजोर वर्ग की मदद संबंधी 29 योजनाएं शामिल हैं। अभी खाद्यान्न और उर्वरक सब्सिडी को इसके बाहर रखा

गया है।

इस व्यवस्था को इलेक्ट्रॉनिक बेनिफिट ट्रांसफर (ईबीटी) नाम दिया गया है। वस्तुतः देश में कमजोर, जरूरतमंद वर्ग को सब्सिडी देना सरकार की सामाजिक जिम्मेदारी है। देश में प्रतिवर्ष करीब 10 करोड़ गरीब परिवारों को लगभग 3.20 लाख करोड़ रुपये से अधिक की सब्सिडी दी जाती है। कमजोर तबके के लोगों को सब्सिडी देना जरूरी है, लेकिन उसका भारी दुरुपयोग भी चिंतनीय है। इसका अधिकांश भाग भ्रष्ट लोगों की जेबों में चला जाता है।

विभिन्न आर्थिक–सामाजिक अध्ययनों में यह बात उभरकर सामने आ रही है कि 100 रुपये में से 15 से 20 रुपये ही जरूरतमंदों तक पहुंच पाते हैं। नवंबर, 2012 में राष्ट्रीय लोक वित्त एवं नीति संस्थान (एनआईपीएफपी) ने विश्लेषण किया कि नकद सब्सिडी योजना से सरकार को 52.85 फीसदी की दर से फायदा हो सकता है। राजकोषीय सुदृढ़ीकरण पर सितंबर, 2012 में प्रकाशित विजय केलकर समिति की रिपोर्ट में कहा गया है कि सब्सिडी और राजकोषीय घाटे में भारी कमी लाने के लिए सरकार को सब्सिडी का दुरुपयोग रोकना होगा।

सब्सिडी का दुरुपयोग रोकने के लिए नंदन नीलेकणि कमेटी का साफ कहना है कि जिन लोगों को सब्सिडी की जरूरत है, उन्हें इसे नकद सहायता (कैश ट्रांसफर) के रूप में ही दिया जाना चाहिए। हमारे देश के राजकोषीय घाटे एवं सब्सिडी की स्थिति दक्षिण यूरोपीय देशों की तरह चिंताजनक होने की डगर पर आगे बढ़ रही है। ऐसे में सरकार द्वारा नकद सब्सिडी दिए जाने से संबंधित नीति में जो तब्दीली की गई है, उसकी आवश्यकता लंबे समय से बनी हुई थी। चालू वित्त वर्ष के बजट में रखी गई 6.5 फीसदी विकास दर की प्राप्ति जिन कारणों से मुश्किल बताई जा रही है, उनमें सब्सिडी भी एक बड़ी वजह है।

स्टैंडर्ड ऐंड पुअर्स और मूडीज जैसी वैश्विक रेटिंग एजेंसियों ने भारत की विकास दर का अनुमान पांच से साढ़े पांच फीसदी तक सीमित कर दिया है। कहा जा रहा है कि यदि भारी–भरकम सब्सिडी और राजकोषीय घाटे जैसी आर्थिक बुराइयों को शीघ्र नियंत्रित नहीं किया गया, तो देश की आर्थिक स्थिति और बिगड़ सकती है और देश में कर्ज संकट पैदा हो सकता है।

नकद सब्सिडी योजना की एक महत्वपूर्ण बाधा यह है कि इस समय सरकार के पास ऐसा कोई मूलभूत पैमाना नहीं है, जिसके आधार पर वह विभिन्न योजनाओं पर बढ़ते हुए महंगाई स्तर को माप सके और सरकारी योजना की लाभ राशि में वृद्धि कर सके। मसलन, सरकार वर्तमान बाजार मूल्य के मुताबिक वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए लोगों को नकद सब्सिडी का हस्तांतरण शुरू कर सकती है, लेकिन कीमतों में होने वाले फेरबदल के अनुरूप सब्सिडी की धनराशि बढ़ाने या घटाने से संबंधित कोई मूल्यांकन प्रणाली नहीं है।

निस्संदेह नकद सब्सिडी की योजना लाभप्रद और महत्वाकांक्षी है, परंतु इसकी डगर में कई मुश्किलें हैं। वस्तुतः यह योजना प्रमुखतः तीन बातों पर केंद्रित है– एक लाभार्थी का आधार कार्ड, दो, लाभार्थी का बैंक खाता और तीन, मजबूत आईटी आधार। स्थिति यह है कि आधार कार्ड का परिदृश्य कमजोर है। देश के 121 करोड़ लोगों में से अब तक सिर्फ 21 करोड़ लोगों के आधार कार्ड बने हैं। इतना ही नहीं, फर्जी आधार कार्ड भी बने हैं। हैदराबाद में 800 आधार कार्ड फर्जी मिले हैं। जिस आधार कार्ड को लेकर सरकार इतना बड़ा ताना–बाना बुन रही है, उसे अभी कानूनी जामा नहीं पहनाया गया है। आधार कार्ड के डाटा की सुरक्षा पर भी सवाल उठ रहे हैं।

नकद सब्सिडी योजना के दूसरे महत्वपूर्ण आधार बैंक खातों की स्थिति भी अच्छी नहीं है। देश में इस समय करीब 40 फीसदी लोग ही बैंक खाता रखते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में तो बैंक खाता रखने वाले लोगों की संख्या मात्र 18 फीसदी ही है।

इन सबके अलावा आशंका यह भी है कि सब्सिडी नकद रूप में प्राप्त करने के बाद यह जरूरी नहीं है कि उस पैसे का उपयोग उसी कार्य के लिए किया जाए, जिसके लिए अनुदान दिया गया है। परिवारों का मुखिया प्राप्त नकदी को जरूरी कामों के बजाय नशे, जुए तथा सामाजिक कुरीतियों जैसे कार्यों में खर्च कर सकता है। चूंकि अब भी बड़ी संख्या में ग्रामीण अशिक्षित हैं और वे सरकारी तंत्र से निपट पाने में सक्षम नहीं हैं। ऐसे में बैंकों और अन्य वित्तीय कार्यों में मध्यस्थों की भूमिका बनी रहेगी। इससे गरीबों के नकदी से वंचित होने का खतरा बढ़ जाएगा। निश्चित रूप से नकद सब्सिडी योजना की डगर पर कई बाधाएं हैं। लेकिन इस योजना की उपयोगिताओं को देखते हुए इन बाधाओं को कारगर प्रयासों से दूर करना होगा। देश के करोड़ों गरीब और जरूरतमंद लोग सामाजिक न्याय और सामाजिक सुरक्षा के लिए इस योजना से भारी उम्मीदें लगाए हुए हैं, तो दूसरी ओर अर्थव्यवस्था को जर्जर होने से बचाने, भ्रष्टाचार और महंगाई रोकने की इच्छा रखने वाले करोड़ों लोग इस योजना से भारी अपेक्षाएं रखते हैं। ऐसे में इतनी आशाओं और अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए सरकार की पुख्ता तैयारी, प्रशासनिक दक्षता तथा विश्वसनीयता के साथ त्वरित कदम और लाभार्थियों की जागरूकता जरूरी होगी।

निस्संदेह नकद सब्सिडी की योजना लाभप्रद और महत्वाकांक्षी है, परंतु इसकी डगर में कई मुश्किलें हैं। यह योजना मुख्यतया तीन बातों पर केंद्रित है– एक लाभार्थी का आधार कार्ड, दो, लाभार्थी का बैंक खाता और तीन, मजबूत आईटी आधार। इन तीनों ही मामलों में स्थिति को बेहतर नहीं कहा जा सकता। ❑

# 64वें गणतंत्र दिवस पर विशेष

**इंदिराजी ने गरीबी हटाओ का नारा बीसवीं सदी के आठवें दशक में ही दिया था और इसी लुभावने नारे के चलते कांग्रेस सत्ता पर काबिज हुयी। पर चार दशक बीत गए। फिर भी गरीबी, भुखमरी का विकटतम जाल भारत में पसरा ही हुआ है और पसर ही रहा है। विश्व के 231 राष्ट्रों और द्वीपों में से हम अभी भी कमजोर राष्ट्र के तौर पर 153वें नम्बर पर आते हैं।**

**■ प्रभात झा**

प्रति वर्ष गणतंत्र दिवस पर सारा देश नारा लगाता है – 'गणतंत्र अमर रहे' पर उसकी अमरता कैसे बनी रहे, इस पर 63 वर्ष बाद भी उतना ध्यान नहीं दिया जा रहा जितना देना चाहिए। पहले गणतंत्र दिवस पर जो सवाल उपजे थे, वे सभी सवाल आज विकराल रूप लिए हुए न केवल मौजूद हैं बल्कि चेतावनी दे रहे हैं कि नहीं संभाला गया तो कहीं हम भारत से अलग न हो जाएं। भारतीय गणतंत्र के 6 दशक बीत जाने के बावजूद न तो हम बाह्य रूप से रक्षित हैं और न हीं आंतरिक रूप से सुरक्षित। जब देश की राजधानी को ही– 'रेप कैपिटल' के रूप में जाना जा रहा हो तो दूरदराज क्षेत्रों में लोग कितने सुरक्षित होंगे, इसका अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है। हम मजबूती का नारा लगा रहे हैं और गणतंत्र अंदर से हिलने लगा है। हम विश्व के सबसे बड़े गणतंत्र हैं पर सबसे कमजोर गणतांत्रिक राष्ट्र के रूप में हमारी गिनती होती है। हर बार हारने के बाद भी पाकिस्तान और बंगलादेश हमारे लिए सिरदर्द हैं और चीन से तो हम जवाबतलब भी नहीं कर पाते। उल्टे कभी–कभी तो ऐसा लगता है कि सीमाओं पर उसके अतिक्रमण को हम मौन रूप से स्वीकार ही कर रहे हैं।

**एक सर्वेक्षण के अनुसार 25 करोड़ युवाओं में से 32 प्रतिशत युवाओं ने कहा है कि यद्यपि भारत के विकास दर में वृद्धि हुई है लेकिन उनका जीवन सुखमय नहीं हुआ है। भारत में ही आय विषमता का दौर तेजी से बढ़ रहा है जो हम सबके लिए चिंता का विषय है। इस समय भारत की अर्थव्यवस्था संकट के दौर से गुजर रही है। भारत में रहने वाले 1 अरब 25 करोड़ लोगों के लिए यह गंभीर संकट का दौर है।**

एक सर्वेक्षण के अनुसार 25 करोड़ युवाओं में से 32 प्रतिशत युवाओं ने कहा है कि यद्यपि भारत के विकास दर में वृद्धि हुई है लेकिन उनका जीवन सुखमय नहीं हुआ है। भारत में ही आय विषमता का दौर तेजी से बढ़ रहा है जो हम सबके लिए चिंता का विषय है। इस समय भारत की अर्थव्यवस्था संकट के दौर से गुजर रही है। भारत में रहने वाले 1 अरब 25 करोड़ लोगों के लिए यह गंभीर संकट का दौर है।

एनएसएसओ की हालिया रिपोर्ट के अनुसार 25 करोड़ 30 लाख लोगों के पास रोजगार नहीं है। अर्थव्यवस्था मंद है। देश के विकास की दर दिनोंदिन कम होती जा रही है। सारी दुनिया कह रही है कि यह सदी एशिया की सदी होगी। लेकिन क्या हम ऐसी प्रगति से एशिया में अपनी भूमिका निभा पाएंगे। कहीं न कहीं हम

सभी आशंकित हैं।

अंतर्राष्ट्रीय सहायता एजेंसी 'सेव द चिल्ड्रेन' ने कहा है कि भोजन की कमी के कारण भारत में बच्चों की आधी आबादी का पूरी तरह से शारीरिक और मानसिक विकास नहीं हो पा रहा है।

इस सर्वेक्षण में शामिल 24 प्रतिशत लोगों के अनुसार उनके यहां 16 साल के कम उम्र के बच्चों को अक्सर भूखे रहना पड़ता था। 29 प्रतिशत लोगों ने उनके बच्चों को पर्याप्त भोजन नहीं मिलने की शिकायत की है। 27 प्रतिशत लोग हर हफ्ते अपने बच्चों के लिए मांस, दूध और सब्जी नहीं खरीद सकते। 66 प्रतिशत लोगों ने माना कि पिछले पूरे साल खाने की बढ़ती कीमतों से वे चिंतित रहे हैं। 29 प्रतिशत लोगों ने परिवार के लिए खरीदे जाने वाले राशन में कटौती करनी शुरु दी है। 17 प्रतिशत लोगों ने परिवार के लिए खाना जुटाने के लिए अपने बच्चों को स्कूल छुड़वाकर उन्हें काम पर लगा दिया है। 63वां गणतंत्र में आने वाली पीढ़ी की बदहाली का यह ताजा रपट है। हम कैसे भारत का निर्माण करेंगे। आने वाला भारत मजबूत होगा या मजबूर होगा। भारत के नौनिहालों की स्थिति अगर यही रही तो हम एक मजबूत राष्ट्र की कल्पना कैसे कर पायेंगे? इस स्थिति से उबरने के लिए ठोस और कारगर कदम की महती आवश्यकता है।

**क्या हम भुखमरी–गरीबी जैसी विकट समस्या से निजात पाने में सफल रहे हैं? क्या हमने भ्रष्टाचार के विषवेल को काटने या उसे कम करने में सफलता प्राप्त की है? क्या लोगों को वास्तविक आजादी मिली या हम भयमुक्त समाज बनाने में सफल रहे हैं। क्या हम बल, सर्वभौम व शक्तिशाली राष्ट्र बनाने में समर्थ रहे। अगर यह सब करने में असफल रहे हैं तो हमें गणतंत्र दिवस पर यह शपथ लेना होगा कि राष्ट्रवाद के इस यज्ञ में हमें सभी वादों की आहुति देनी होगी और अपने–अपने दलगत विचारों को एक तरफ रखते हुए इस यज्ञ में एक साथ कूदना होगा। राजनीति को राष्ट्रनीति बनानी होगी। तभी जाकर हर भारतवासी का सपना पूरा होगा।**

आजादी के बाद केन्द्र में चार – साढ़े चार दशक से भी ज्यादा समय तक कांग्रेस का राज रहा और अब भी कांग्रेस–नीत यूपीए के नाम पर वही शासन में है। राज्यों की सरकारों में भी वर्षों तक कांग्रेस का ही बोलबाला रहा। आम आदमी के साथ चलने का वादा करने वाली कांग्रेस आम आदमी को ही पीसती रही।

इंदिराजी ने गरीबी हटाओ का नारा बीसवीं सदी के आठवें दशक में ही दिया था और इसी लुभावने नारे के चलते कांग्रेस सत्ता पर काबिज हुयी। पर चार दशक बीत गए। फिर भी गरीबी, भुखमरी का विकटतम जाल भारत में पसरा ही हुआ है और पसर ही रहा है। विश्व के 231 राष्ट्रों और द्वीपों में से हम अभी भी कमजोर राष्ट्र के तौर पर 153वें नम्बर पर आते हैं। न हमारी नीयत साफ है और न ही नियति हमारे साथ है। हम एक दूसरे को ठगने में लगे हैं। विश्व का सबसे अमीर व्यक्ति भारत का है। पर भारत विश्व का सबसे गरीब देश कहलाने की श्रेणी में है। यह कैसी विडम्बना है? हम भारतीय विदेशों की सरजमीं पर अच्छे चिकित्सक और अच्छे अभियंता के रूप में जाने जाते हैं पर भारत में अभी भी लाखों चिकित्सक और अभियंता डिग्री लिए हुए नौकरी की तलाश में नेताओं और अधिकारियों के दरवाजे पर भटकते नजर आते हैं।

**देश में घोटालों का ऐसा सिलसिला चला कि हम 176 देशों में 94वें स्थान पर भ्रष्ट देशों की सूची में आ गये। अमेरिका की अनुसंधान एवं सलाहकार संस्था के अनुसार 2001–2010 के बीच 123 अरब डॉलर काला धन विदेश भेजा गया है। इसमें भारत 8वें स्थान पर है। यह रकम इतनी बड़ी है कि इसका अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि बीते एक दशक के दौरान भारत में शिक्षा, स्वास्थ्य और आधारभूत ढांचे के निर्माण पर इससे कम खर्च हुआ।**

ऐसा नहीं है कि हमने प्रगति नहीं की है पर तराजू के एक पलड़े पर प्रगति की बाट रखे और दूसरी तरफ अवनति की तो देखने में आता है आज भी अवनति का पलड़ा भारी है। नैतिकता का पाठ विश्व को पढ़ाने वाला भारत, रामायण और गीता के संदेश को विश्व में देनेवाला भारत, कृष्ण के पांचजन्य से गुंजायमान होने वाला भारत, राम की मर्यादा से सुशोभित होने वाला भारत, सीता की अग्निपरीक्षा से गुजरनेवाला भारत, लवकुश की साहस पर गर्व करने वाला भारत, भगवान हनुमान की सेवा–सुरक्षा पर नाज करने वाला भारत, शबरी के बेर की मिठास से भगवान राम को प्रसन्न करने वाला भारत, पांच पांडवों की एकजुटता से कौरव वंश का नाश करने में समर्थ रहने वाला भारत विश्व में अमरदीप की तरह अमर ज्योति बिखेरता रहा पर आज वही भारत अपने घर की

समस्याओं से जूझ रहा है।

जाति, धर्म, पंथ, भेद, लिंग, भेष–भूषा आदि विषयों को लेकर इस पर आनेकता में एकता के दर्शन नहीं कर पा रहे। हमारी अखंडता और अक्षुण्णता पर प्रश्नचिन्ह लगे हुए हैं अतः हमारे लिए यह अवसर सोचने समझने के साथ साथ करने का भी है।

सन् 2012 के अतीत पर हम नजर डालें तो लगता है कांग्रेसनीत यूपीए ने सत्ता नहीं चलाई बल्कि भारतीय लोकतंत्र को ताश के पत्तों की तरह बिखेर दिया। 2जी स्पेक्ट्रम आवंटन में 1.76 लाख करोड़ का घोटाला, राष्ट्रमंडल खेल घोटाला, आदर्श सोसायटी घोटाला, कोयला घोटाला सहित एक नहीं अनेक घोटाले उजागर हुए और हम भारतवासियों पर नित्य नये घोटालों की कालिख पुत रही है।

देश में घोटालों का ऐसा सिलसिला चला कि हम 176 देशों में 94वें स्थान पर भ्रष्ट देशों की सूची में आ गये। अमेरिका की अनुसंधान एवं सलाहकार संस्था के अनुसार 2001–2010 के बीच 123 अरब डॉलर काला धन विदेश भेजा गया है। इसमें भारत 8वें स्थान पर है। यह रकम इतनी बड़ी है कि इसका अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि बीते एक दशक के दौरान भारत में शिक्षा, स्वास्थ्य और आधारभूत ढांचे के निर्माण पर इससे कम खर्च हुआ है।

भ्रष्ट व्यवस्था का आलम यह है भारतीय अर्थव्यवस्था को केवल 2012 में ही अवैध वित्तीय लेन–देन के चलते करीब 1.6 अरब डॉलर (85 अरब रुपये) का नुकसान उठाना पड़ा है। पिछले कुछ महीने पहले भारतीय वाणिज्य उद्योग परिषद (फिक्की) ने कहा था कि उसके आंकड़ों के मुताबिक 45 लाख करोड़ का काला धन विदेशी बैंकों में जमा है जो कि भारत के सकल घरेलू उत्पाद का करीब करीब 50 प्रतिशत का हिस्सा है और भारत के वित्तीय घाटा का नौ गुना है।

हमारे लिए दुखद प्रसंग यह है कि केन्द्र सरकार स्वयं ही भ्रष्ट लोगों को बचाने में लगी हुई है और सुप्रीम कोर्ट के दबाव के बाद भी कालेधन जमा करने वालों के नाम छुपा रही है, तो इस देश का कैसे कल्याण हो सकता है? हम कैसे शक्तिशाली राष्ट्र की कल्पना कर सकते हैं? पूरे भारत पर जब नजर दौड़ाते हैं तो पूर्वोत्तर की दशा पर सहसा रोना आता है। पूर्वोत्तर के लोगों के लिए आचार्य बिनोवा भावे ने कहा था, ''अंग्रेजों ने जो स्वतंत्रता दी वह उनके पॉकेट में ही रही,'' लगता है आचार्य ने जो बात कही थी वह गणतंत्र बनने के 6 दशक बाद भी पूर्णतया सही लगती है। सही मायनों में पूर्वोत्तर आज भी देश ही मुख्यधारा से नहीं जुड़ पाया।

**ऐसे में कुछ यक्ष प्रश्न आज भी अनुत्तरित हैं क्या हम उन सपनों को पाने में समर्थ रहे हैं जिन्हें महान स्वतंत्रता सेनानियों ने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान देखा था? क्या हम गणतंत्र का वास्तविक स्वरूप पाने में सफल रहे हैं?**

सच तो यह है कि अलगाववादी ताकतों ने असम, मणिपुर, नगालैंड, त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मिजोरम व सिक्किम में विकास की हवा पहुंचने नहीं दे रही है। पहाड़ी राज्यों में ट्रेन रूट व सड़कों का अभाव विकास को भी आगे नहीं बढ़ने दे रही। समूचे पूर्वोत्तर के बाशिंदे सड़क परिवहन पर ही निर्भर हैं। पूर्वोत्तर न सिर्फ अलगावादी समस्या से ग्रस्त है बल्कि इन राज्यों में सीमा विवाद भी उफान पर है।

राष्ट्रीय एकता और अखंडता अभी भी अधूरी है। असम में हिंदीभाषाओं पर हमले होते रहते हैं। बंगलादेश से घुसपैठ निरंतर जारी है। असम के कई सीमावर्ती जिलों में भयावह जनसांख्यिकी परिवर्तन आ चुका है और वहां भारत को तोड़ने की साजिश रची जा रही है। जम्मू–कश्मीर में पाक प्रायोजित आतंकवाद अपना तांडव दिखा रहा है वहीं पूर्वोत्तर में चरमपंथी देश की एकता व अखंडता को तोड़ने में लगे हैं। उधर, चीन भी अरुणाचल पर अपनी गिद्धदृष्टि लगाये हुए हैं। अरुणाचलवासियों और जम्मू–कश्मीर के लोगों को नत्थीवीजा दे रहा है। चीन अपनी इच्छानुसार सीमा पर अतिक्रमण करता है और भारत सरकार भयग्रस्त होकर चुप्पी साधे रहती है।

ऐसे में कुछ यक्ष प्रश्न आज भी अनुत्तरित हैं क्या हम उन सपनों को पाने में समर्थ रहे हैं जिन्हें महान स्वतंत्रता सेनानियों ने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान देखा था? क्या हम गणतंत्र का वास्तविक स्वरूप पाने में सफल रहे हैं? क्या हम भुखमरी–गरीबी जैसी विकट समस्या से निजात पाने में सफल रहे हैं? क्या हमने भ्रष्टाचार के विषवेल को काटने या उसे कम करने में सफलता प्राप्त की है? क्या लोगों को वास्तविक आजादी मिली या हम भयमुक्त समाज बनाने में सफल रहे हैं। क्या हम बल, सर्वभौम व शक्तिशाली राष्ट्र बनाने में समर्थ रहे। अगर यह सब करने में असफल रहे हैं तो हमें गणतंत्र दिवस पर यह शपथ लेना होगा कि राष्ट्रवाद के इस यज्ञ में हमें सभी वादों की आहुति देनी होगी और अपने–अपने दलगत विचारों को एक तरफ रखते हुए इस यज्ञ में एक साथ कूदना होगा। राजनीति को राष्ट्रनीति बनानी होगी। तभी जाकर हर भारतवासी का सपना पूरा होगा। ❑

# वैश्विक संकट में भारत की भूमिका

**मनमोहन सिंह को समझना चाहिये कि ऐय्याशी से कंगाल हुये भूखे व्यक्ति को ग्लूकोज़ देकर उसके स्वास्थ को नहीं सुधारा जा सकता है। उसे अन्ततः ऐय्याशी छोड़कर रोजगार करना ही होगा उसे चाहे पटरी पर मूंगफली ही क्यों नहीं बेचनी पड़े। उसे अपने जीवन स्तर में कटौती स्वीकार करनी ही होगी। इसी प्रकार पूर्व में हाइटेक माल बेचकर अथवा दूसरे देशों पर सैन्य कार्यवाही करके अमीर देश ऊंचे जीवन स्तर के आदी हो चुके हैं। अब उनके पास बेचने के लिये माल नहीं बचा है। ऋण देकर भारत उन्हें बचा नहीं सकता है। सही उपाय यही होगा कि वे अपने उच्च जीवन स्तर के साथ समझौता करें।**

■ डॉ. भरत झुनझुनवाला

विकसित देशों से दो परस्पर विरोधी समाचार मिल रहे हैं। एक ओर संकेत है कि औद्योगिक उत्पादन में सुधार हो रहा है, बेरोजगारी भत्ते के क्लेम घट रहे है, वैश्विक मंदी समाप्त हो रही है और सब कुछ ठीक ठाक है। दूसरी तरफ आम आदमी की हालत बिगड़ती दिख रही है। लंदन में ब्रिटिश सरकार के लिये काम कर रही एक मनोवैज्ञानिक ने बताया कि इंग्लैण्ड में वृद्ध लोग मर रहे हैं क्योंकि घर को गरम रखने के लिये उनके पास ईंधन तेल खरीदने को धन नहीं है। गरीब परिवारों में बच्चों को पर्याप्त भोजन नहीं मिल रहा है। अध्यापकों का कहना है कि स्कूल में दिये जाने वाले मध्यान्ह भोजन की मात्रा में कटौती करने से बच्चों के स्वास्थ में गिरावट आ रही है।

**मनमोहन सिंह विकसित देशों को संकट से बचाना चाहते हैं। वसुदैव कुटुम्बकम् के मंत्र के आधार पर उनके मन्तव्य का स्वागत है। परन्तु डाक्टर के लिये जरूरी है कि भूखे मरीज को स्पष्ट रूप से बताये कि उसे भोजन की जरूरत है और रोजगार करके अपनी भोजन सामग्री जुटानी ही पड़ेगी। डाक्टर को मरीज को ग्लुकोज़ चढ़ाकर गुमराह नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार मनमोहन सिंह को पश्चिमी देशों को ऋण देने के स्थान पर जीवन स्तर में कटौती करने की मंत्रणा देनी चाहिये।**

नीदरलैंड में एक विन्ड मिल पर्यटन केन्द्र के कर्मचारी ने बताया कि स्कूल के बजट में कटौती होने से विन्डमिल को देखने आने वाले बच्चों की संख्या कम हो रही है। एक टेलिफोन कम्पनी अपने खाते के रख रखाव का कार्य फिलीपीन्स को स्थानान्तरित कर रही है और इस कार्य में लगे उनके लोग बेरोजगार होने को हैं।

इन परस्पर विरोधी सेकेतों का कारण विकसित देशों की सरकारों द्वारा लागू किये गये स्टिम्युलस या उत्प्रेरणा पैकेज दिखते हैं। सरकार द्वारा ऋण लेकर अथवा नोट छापकर बैंकों तथा बड़ी कम्पनियों को मदद दी गयी है और आयकर में कटौती की गयी है। ऋण आसानी से उपलब्ध हो गये हैं। इससे बैंकों एवं कम्पनियों के लाभ उंचे हैं परन्तु मौलिक अर्थव्यवस्था कमजोर है।

यह स्थिति टिकाऊ नहीं है। मुख्य समस्या है कि ये देश वैश्वीकरण में टिक नहीं पा रहे हैं। पूर्व में उनकी कम्पनियां विशेष हाईटेक माल बनाती थीं जिनका

**मनमोहन सिंह का कहना है कि हमें विकसित देशों की मदद करनी चाहिये जिससे विश्व अर्थव्यवस्था न लड़खड़ाये, हमारे निर्यात सुदृढ़ बने रहें और हमें विकसित देशों से पूंजी निवेश मिलती रहे। मेरे आकलन में विकसित देशों को हम ऋण देते रहेंगे तो भी ज्यादा समय तक ये लाभ हमें नहीं मिलेंगे। निर्यातों का विचार कीजिये। यदि हम पश्चिमी देशों को ऋण देते रहते हैं तो उन पर ऋण का भार बढ़ेगा। ऋण का भार बढ़ने पर निवेशक ब्याज अधिक मांगेंगे।**

निर्यात करके ये भारी लाभ कमा रहे थे। वैश्वीकरण के चलते उन्हीं कम्पनियों ने हाइब्रिड कार जैसे हाइटेक माल का उत्पादन भारत, चीन एवं वियतनाम में शुरू कर दिया है। विकासशील देशों में उत्पादन सस्ता पड़ता है चूंकि वहां वेतन कम है। विकसित देशों के पास निर्यात करने के लिये कम ही माल बचा है। फैक्ट्रियां बन्द हो रही हैं। आम आदमी के रोजगार समाप्त हो रहे हैं और सरकार से मिलने वाली मदद में कटौती हो रही है। स्टिमुलस से कम्पनियों को राहत मिलने से वे प्रसन्न हैं परन्तु आम आदमी की स्थिति बिगड़ती जा रही है जैसे रेगिस्तान में आलीशान महल दिखता है।

प्रश्न है कि विकसित देशों का वर्तमान उत्साह टिकाऊ होगा अथवा उनकी अर्थव्यवस्थायें दुबारा मंदी की चपेट में आ जाएंगी? तमाम विश्लेषक वर्तमान उत्साह पर भरोसा कर रहे हैं। मैं इस आकलन से सहमत नहीं हूँ। मेरे आकलन में वर्तमान उत्साह कृत्रिम है जैसे भूख से कमजोर हुए व्यक्ति को ग्लूकोज़ चढ़ा दिया जाए तो तत्काल उसमें ऊर्जा आ जाती है। परन्तु ग्लूकोज़ से भुखमरी का इलाज नहीं होता है। जिस व्यक्ति के पास आटा दाल खरीदने की क्षमता न हो वह ग्लूकोज़ कितने दिन तक खरीदेगा? ऐसी ही स्थिति विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं की है। उनकी कम्पनियों का माल विश्व बाजार में नहीं बिक रहा है लेकिन आसान ऋण और टैक्स में छूट से वे लाभ दिखा रही हैं। यह सुनहरा समय ज्यादा दिन चलने वाला नहीं है। कारण कि आज स्टिमुलस में दी गयी रकम को भविष्य में अदा करना ही होगा। इंग्लैण्ड की सरकार यदि आज ऋण लेकर टैक्स में छूट देती है तो कल टैक्स बढ़ाकर उस ऋण की आदायगी करनी होगी। अथवा आज यदि नोट छापकर खर्च किया जाता है तो शीघ्र ही महंगाई बढ़ेगी। विशेष यह कि भविष्य में महंगाई रोकने के लिये सरकार को खर्चों में दोहरी कटौती करनी होगी। अतः मेरा आकलन है कि आने वाले समय में विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं पर फिर दुबारा संकट गहरायेगा। इस परिस्थिति में भारत को अपनी नीति का निर्धारण करना है।

**प्रश्न है कि विकसित देशों का वर्तमान उत्साह टिकाऊ होगा अथवा उनकी अर्थव्यवस्थाएं दुबारा मंदी की चपेट में आ जाएंगी? तमाम विश्लेषक वर्तमान उत्साह पर भरोसा कर रहे हैं। मैं इस आकलन से सहमत नहीं हूँ। मेरे आकलन में वर्तमान उत्साह कृत्रिम है जैसे भूख से कमजोर हुए व्यक्ति को ग्लूकोज़ चढ़ा दिया जाए तो तत्काल उसमें ऊर्जा आ जाती है। परन्तु ग्लूकोज़ से भुखमरी का इलाज नहीं होता है। जिस व्यक्ति के पास आटा दाल खरीदने की क्षमता न हो वह ग्लूकोज़ कितने दिन तक खरीदेगा?**

मुख्य बात है कि विकसित देशों की सरकारें हमसे ऋण लेकर स्टिमुलस पैकेज के अंतर्गत अपनी कम्पनियों को छूट दे रही हैं। जैसे भारतीय नागरिकों द्वारा हवाला से स्विस बैंक में रकम जमा कराई गयी और स्विस बैंक ने इस रकम से इंग्लैण्ड की सरकार द्वारा जारी किये गये बाण्ड खरीदे। अथवा भारत या चीन की सरकार द्वारा सीधे अमरीकी और यूरोपीय सरकारों के द्वारा जारी किये गये बाण्ड खरीदे जा रहे हैं। विकासशील देशों को निर्णय लेना है कि वे अपनी रकम को विकसित देशों को ऋण के रूप में देंगे अथवा उससे स्वयं अपने देश के नागरिकों की खपत बढ़ायेंगे। मसलन भारत सरकार यदि विदेश में जमा रकम को वापस लाने के लिये कारगर कदम उठाये तो इस रकम के निवेश से रोजगार उत्पन्न होंगे और हमारी खपत बढ़ेगी। साथ–साथ विकसित देशों को हमारी रकम न मिलने के कारण वे अपनी कम्पनियों को छूट नहीं दे सकेंगे और उनकी हालत ज्यादा बिगड़ेगी।

मनमोहन सिंह का कहना है कि हमें विकसित देशों की मदद करनी चाहिये जिससे विश्व अर्थव्यवस्था न लड़खड़ाये, हमारे निर्यात् सुदृढ़ बने रहें और हमें विकसित देशों से पूंजी निवेश मिलती रहे। मेरे आकलन में विकसित देशों को हम

ऋण देते रहेंगे तो भी ज्यादा समय तक ये लाभ हमें नहीं मिलेंगे। निर्यातों का विचार कीजिये। यदि हम पश्चिमी देशों को ऋण देते रहते हैं तो उनपर ऋण का भार बढ़ेगा। ऋण का भार बढ़ने पर निवेशक ब्याज अधिक मांगेंगे। जैसे ग्रीस द्वारा जारी बाण्ड पर 22 प्रतिशत, पुर्तगाल पर 13 प्रतिशत तथा हंगरी पर 9 प्रतिशत का ब्याज उनकी सरकारों को देना पड़ रहा है। ब्याज दर बढ़ने से अन्ततः इन सरकारों के लिये और ऋण लेना संभव नहीं होगा। इनकी अर्थव्यवस्था टूटेगी और भारत से गलीचे खरीदने अथवा मुम्बई शेयर बाजार में निवेश करने की क्षमता नहीं रह जायेगी।

मनमोहन सिंह को समझना चाहिये कि ऐय्याशी से कंगाल हुये भूखे व्यक्ति को ग्लूकोज़ देकर उसके स्वास्थ को नहीं सुधारा जा सकता है। उसे अन्ततः ऐय्याशी छोड़कर रोजगार करना ही होगा उसे चाहे पटरी पर मूंगफली ही क्यों नहीं बेचनी पड़े। उसे अपने जीवन स्तर में कटौती स्वीकार करनी ही होगी। इसी प्रकार पूर्व में हाइटेक माल बेचकर अथवा दूसरे देशों पर सैन्य कार्यवाही करके अमीर देश ऊंचे जीवन स्तर के आदी हो चुके हैं। अब उनके पास बेचने के लिये माल नहीं बचा है। ऋण देकर भारत उन्हें बचा नहीं सकता है। सही उपाय यही होगा कि वे अपने उच्च जीवन स्तर के साथ समझौता करें।

मनमोहन सिंह विकसित देशों को संकट से बचाना चाहते हैं। वसुदैव कुटुम्बकम् के मंत्र के आधार पर उनके मन्तव्य का स्वागत है। परन्तु डाक्टर के लिये जरूरी है कि भूखे मरीज को स्पष्ट रूप से बताये कि उसे भोजन की जरूरत है और रोजगार करके अपनी भोजन सामग्री जुटानी ही पड़ेगी। डाक्टर को मरीज को ग्लुकोज़ चढ़ाकर गुमराह नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार मनमोहन सिंह को पश्चिमी देशों को ऋण देने के स्थान पर जीवन स्तर में कटौती करने की मंत्रणा देनी चाहिये। हमें समझना चाहिये कि वैश्वीकरण का तार्किक परिणाम वैश्विक जीवन स्तर में समानता है और इस नियति को व्यर्थ रोकने का प्रयास नहीं करना चाहिये। ❑

# सदस्यता संबंधी सूचना

मान्यवर,,

स्वदेशी पत्रिका आज देश में चल रहे स्वदेशी आंदोलनों का स्थापित प्रतीक बन चुकी है। पिछले कई वर्षों से स्वदेशी पत्रिका ने असंगत एवं एकतरफा वैश्वीकरण, जनविरोधी आर्थिक उदारीकरण के विरोध एवं वैकल्पिक और रचनात्मक स्वदेशी आंदोलन के पक्ष में एक सक्रिय प्रहरी के नाते हमेशा आपको जागरूक बनाया है एवं आपसे संवाद स्थापित किया है। विगत कालखंड में इन सभी मुद्दों पर हमें आप जैसे सजग पाठकों का अपेक्षित सहयोग भी मिलता रहा है और भविष्य में भी मिलेगा ऐसा, विश्वास है।

आपसे आग्रह है कि स्वदेशी पत्रिका की आपकी सदस्यता अवधि यदि समाप्त हो गई हो तो कृपया पिछले समय से आगामी वर्ष तक की राशि धनादेश (मनीआर्डर), चेक एवं मांग पत्र (डिमांड ड्राफ्ट) के माध्यम से शीध्र भेजने की कृपा करें। पत्रिका के लिफाफे के उपर चिपकाए गए पते की प्रथम पंक्ति में सदस्यता अवधि अंकित है। आप अपनी सदस्यता राशि ''स्वदेशी पत्रिका'' के नाम पत्रिका के कार्यालय के पते पर भेज सकते हैं। सदस्यता अद्यतन न हो पाने की स्थिति में वित्तीय कारणों से पत्रिका आगे जारी रखना कठिन होगा।

## सदस्यता शुल्क निम्न प्रकार है।

| स्वदेशी पत्रिका | वार्षिक | आजीवन |
|---|---|---|
| हिन्दी | 100/— | 1000/— |
| अंग्रेजी | 100/— | 1000/— |

हमें आपका सहयोग स्वदेशी आंदोलन को राष्ट्रव्यापी एवं जनोन्मुखी बनाने में प्रमुख भूमिका निभाएगा। कृपया स्वदेशी पत्रिका स्वयं भी पढ़ें एवं अन्य को भी पढ़ने के लिए प्रेरित करें। पत्रिका के संबंध में अपना निष्पक्ष विचार हमें अवश्य भेजें।

पता : **स्वदेशी पत्रिका कार्यालय, 'धर्मक्षेत्र' शिव शक्ति मंदिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली–22**

चर्चा

# नया नहीं - लॉबिंग का खेल

**करीब 25 वर्ष पहले जब पंजाब में दूसरी बागवानी क्रांति लाने का दावा करती हुई पेप्सी भारत में पिछले दरवाजे से प्रवेश की तैयारी कर रही थी, तो उसने पंजाब के एक वरिष्ठ नौकरशाह को अमेरिका में अपनी उत्पादन इकाइयां देखने के लिए आमंत्रित किया। आश्चर्य की बात है कि अमेरिका जाने के पहले उक्त अधिकारी पेप्सी के देश में प्रवेश के सख्त खिलाफ थे, लेकिन वहां से लौटने के बाद उनकी राय बदल चुकी थी।**

■ **देविन्दर शर्मा**

भारत के पांच सौ अरब डॉलर के आकर्षक बाजार पर पकड़ मजबूत करने के लिए अमेरिका और भारत में लॉबिंग पर 125 करोड़ रुपये खर्च करने के वालमार्ट के खुलासे ने एक राजनीतिक तूफान खड़ा कर दिया है। इसको लेकर राज्यसभा और लोकसभा में हुए हंगामे के बाद बहस की जा रही है कि लॉबिंग रिश्वत का ही एक प्रकार है या नहीं।

सबसे पहले यह समझने की जरूरत है कि आखिर लॉबिंग का असल अर्थ क्या है और यह कैसे संचालित होती है? दरअसल, लॉबिंग कोई नई बात नहीं है। हां, यह जरूर है कि अब यह पहले की तुलना में कुछ ज्यादा परिष्कृत हो गई है।

करीब 25 वर्ष पहले जब पंजाब में दूसरी बागवानी क्रांति लाने का दावा करती हुई पेप्सी भारत में पिछले दरवाजे से प्रवेश की तैयारी कर रही थी, तो उसने पंजाब के एक वरिष्ठ नौकरशाह को अमेरिका में अपनी उत्पादन इकाइयां देखने के लिए आमंत्रित किया। आश्चर्य की बात है कि अमेरिका जाने के पहले उक्त अधिकारी पेप्सी के देश में प्रवेश के सख्त खिलाफ थे, लेकिन वहां से लौटने के बाद उनकी राय बदल चुकी थी।

लॉबिंग की ऐसी कुटिल, लेकिन प्रभावशाली गतिविधियों को अमूमन नजरंदाज कर दिया जाता है। जरा याद कीजिए कि खुदरा में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश पर केंद्रीय मंत्रिमंडल की स्वीकृति से ठीक पहले अखबारों में ऐसे लेखों और साक्षात्कारों की भरमार थी, जिनमें इस विवादित फैसले को रोके रखने की तीखी आलोचना की गई थी। दावे किए जा रहे थे, मानो रिटेल में एफडीआई की अनुमति को रोकना, आजादी के बाद की सबसे बड़ी भूल हो।

वास्तव में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को 'अंडरअचीवर' बताने वाली टाइम

**लेकिन चिंता तब होती है, जब राष्ट्रों के प्रमुख लॉबिंग जैसी गतिविधियों में लिप्त पाए जाते हैं। गौरतलब है कि 2009 के बाद से भारत की यात्रा पर आए सभी प्रमुख आर्थिक शक्तियों के प्रमुखों ने रिटेल में एफडीआई की पुरजोर वकालत की है। अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा, इंग्लैंड के प्रधानमंत्री डेविड कैमरन, फ्रांस के पूर्व राष्ट्रपति निकोलस सरकोजी और जर्मनी की चांसलर एंजेला मर्केल, सभी ने भारतीय प्रधानमंत्री को रिटेल क्षेत्र को खोलने की जरूरत का एहसास कराया।**

पत्रिका की कवर स्टोरी भी परोक्ष रूप से लॉबिंग ही थी। इसके पीछे सोच यह थी कि मनमोहन सिंह पर लंबित मामलों को निपटाने के लिए दबाव बनाया जाए।

अमूमन मीडिया के ऐसे छद्म अभियानों के पीछे कॉरपोरेट लॉबिंग का हाथ होता है। राजनीतिक फैसलों को प्रभावित करने में इनकी भूमिका का पर्दाफाश नीरा राडिया के टेपों में भी हुआ था। तीक्ष्ण, आक्रामक और हमेशा पैसों से भरा बैग अपने साथ रखने वाले लॉबिस्ट सत्ता के गलियारों में घूमते रहते हैं। मंत्रियों, राजनीतिकों, अर्थशास्त्रियों और मीडिया के लोगों से इनकी साठगांठ रहती है। वे इन्हें सिखाते हैं कि बेरोजगारी और कृषि से जुड़े संकटों से निजात पाने के लिए भारत को बड़े खुदरा कारोबारियों को आमंत्रित करने की जरूरत क्यों है?

फॉर्मास्युटिकल कंपनियों ने तो सारी हदों को तोड़ते हुए लॉबिंग को अनैतिक आचरण बना दिया है। महंगे उपहारों और यात्राओं जैसे प्रलोभन से भरे प्रस्तावों को तुरंत स्वीकारने वाले लालची डॉक्टरों की आज भरमार है। हालांकि औषधि बाजार के लिए एक समान संहिता बनाने की सरकार की योजना है, लेकिन सचाई यह है कि गुजरते हुए हर दिन के साथ ही भ्रष्टाचार और लॉबिंग के बीच की रेखा निरंतर धुंधली होती जा रही है।

डाऊ केमिकल्स का ही उदाहरण लें, जिसे बाद में यूनियन कार्बाइड ने खरीद लिया। एक रिपोर्ट की मानें, तो डाऊ केमिकल्स ने वर्ष 2011 में थाईलैंड, भारत और चीन के बाजारों तक पहुंच बनाने में 50 करोड़ रुपये खर्च किए। इससे पहले अमेरिका के सिक्यूरिटीज और एक्सचेंज कमीशन ने वर्ष 2007 में डाऊ केमिकल्स पर अमेरिका और कई अन्य देशों में प्रतिबंधित अपने पेस्टिसाइड्स बेचने की अनुमति दिलाने के लिए भारतीय अधिकारियों को रिश्वत देने के आरोप में 3,25,000 डॉलर का जुर्माना लगाया था।

भारत ने इसके लिए सीबीआई जांच बिठाई, लेकिन नतीजा कुछ नहीं निकला। भले ही भोपाल गैस कांड में यूनियन कार्बाइड की भूमिका के मुद्दे पर ढिलाई बरतने के पीछे तमाम व्यावहारिक कारण छिपे हों, लेकिन इससे यह तो जाहिर है कि जब बात बड़े उद्यमियों की हो, तो उत्तरदायित्व की परिभाषा बदलने लगती है।

**काफी शॉप 'स्टारबक्स' को जनवरी 2012 में भारत में कारोबार की अनुमति मिली। अमेरिकी सीनेट के सामने पेश किए गए दस्तावेजों की मानें, तो इस कंपनी ने भारत में अपने बाजार की शुरुआत करने के लिए 2011 के पहले छह महीनों में एक करोड़ रुपये से ज्यादा की रकम खर्च की।**

बीज और प्रौद्योगिकी की वैश्विक कंपनी मोनसेंटो विकासशील देशों में जैविक रूप से परिष्कृत फसलों की आक्रामक वकालत करने के लिए जानी जाती है। अमेरिका के न्याय विभाग ने 2005 में मोनसेंटो पर इंडोनेशियाई अधिकारियों को रिश्वत देने के आरोप में जुर्माना लगाया था। आखिर लॉबिंग और रिश्वतखोरी के बीच कुछ अंतर तो जरूर होना चाहिए।

कुछ समय पहले न्यूयॉर्क टाइम्स ने मैक्सिको में वालमार्ट के एक और कारनामे का पर्दाफाश किया था, जहां इसने अपने स्टोर्स की तादाद बढ़ाने के लिए रिश्वत का सहारा लिया था। भारत में इस कंपनी के खिलाफ प्रवर्तन निदेशालय जांच कर रहा है।

काफी शॉप 'स्टारबक्स' को जनवरी 2012 में भारत में कारोबार की अनुमति मिली। अमेरिकी सीनेट के सामने पेश किए गए दस्तावेजों की मानें, तो इस कंपनी ने भारत में अपने बाजार की शुरुआत करने के लिए 2011 के पहले छह महीनों में एक करोड़ रुपये से ज्यादा की रकम खर्च की। भारत में प्रवेश के लिए लॉबिंग करने वाली कंपनियों की फेहरिस्त में फाइनेंशियल सर्विसेज मेजर मॉर्गन स्टेनले, न्यूयार्क लाइफ इंश्योरेंस, प्रूडेंशियल फाइनेंशियल के अलावा तकनीकी कंपनियां जैसे इंटेल, डाऊ केमिकल्स इत्यादि शामिल हैं।

लेकिन चिंता तब होती है, जब राष्ट्रों के प्रमुख लॉबिंग जैसी गतिविधियों में लिप्त पाए जाते हैं। गौरतलब है कि 2009 के बाद से भारत की यात्रा पर आए सभी प्रमुख आर्थिक शक्तियों के प्रमुखों ने रिटेल में एफडीआई की पुरजोर वकालत की है। अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा, इंग्लैंड के प्रधानमंत्री डेविड कैमरन, फ्रांस के पूर्व राष्ट्रपति निकोलस सरकोजी और जर्मनी की चांसलर एंजेला मर्केल, सभी ने भारतीय प्रधानमंत्री को रिटेल क्षेत्र को खोलने की जरूरत का एहसास कराया।

हमारे देश में लॉबिंग की कुटिल, मगर प्रभावशाली गतिविधियों को अमूमन नजर अंदाज कर दिया जाता है। याद कीजिए कि एफडीआई को केंद्रीय मंत्रिमंडल की स्वीकृति से पहले मीडिया में ऐसी रिपोर्टों की भरमार थी, जिनमें इस फैसले को रोके रखने के लिए हो रहे प्रयासों को राजनीतिक ब्लैकमेल बताया जा रहा था। ❑

# कृषि भूमि पर हो इनका हक

**दलित भूमिहीनों को दी गई बहुत सी भूमि बिना जोती ही रह जाती है क्योंकि यह जमीन ऊबड़–खाबड़, पथरीली व सिंचाई के किसी स्रोत से दूर होती है। ऐसी स्थिति में यदि देश के लाखों दलित व कमजोर परिवारों को सफल किसान बनते का अवसर देना है तो इसके लिए अभियान चलाने होंगे, भूमि की पैमाइश व पहचान की विशेष व्यवस्था करनी होगी, अवैध अतिक्रमणों को हटाना होगा व गांवों में ऐसी सुरक्षा का माहौल बनाना होगा कि दलित परिवार उस जमीन को जोत सकें जो उन्हें आवंटित की गई है।**

■ **भारत डोगरा**

लंबे समय तक देश की खेती–किसानी में केवल मजदूर की भूमिका तक सीमित रखे गए दलित व अन्य कमजोर समुदायों के भूमिहीन परिवारों को भी अनुकूल अवसर मिलें तो वे बहुत सफल किसान बन सकते हैं। इतने वर्षों तक दूसरों के खेतों में मेहनत–मजदूरी कर उन्होंने देश का खाद्य–उत्पादन बढ़ाने में अमूल्य योगदान दिया। अब समय आ गया है कि न्यायसंगत समाज की स्थापना के उद्देश्यों के अनुकूल उन्हें अपनी जमीन देकर सफल किसान बनने के समुचित अवसर दिए जाएं।

राष्ट्रीय स्तर पर लाखों दलित व अन्य कमजोर वर्ग के परिवार हैं जिन्हें सरकारी कागजों में तो जमीन का पट्टा मिल चुका है पर व्यावहारिक स्तर पर वे भूमिहीन हैं क्योंकि वे भूमि के पट्टे पर वास्तव में कब्जा नहीं कर पाए हैं। ऐसे परिवारों को प्रायः दोहरी सजा झेलनी पड़ती है। सरकारी रिकार्ड में भूस्वामी दिखा दिए जाने के कारण एक ओर वे बीपीएल (गरीबी की रेखा के नीचे) का कार्ड व सुविधा प्राप्त करने से वंचित हो जाते हैं और दूसरी ओर या तो उनकी भूमि की सही पहचान व पैमाइश होती ही नहीं है या इस भूमि का पता चलने पर वे उसे जोतने जाते हैं तो गांव के दबंग लोगों द्वारा खदेड़ दिए जाते हैं।

ऐसी कुछ भूमि पर दबंग स्वयं कब्जा कर लेते हैं, जबकि दलित भूमिहीनों को दी गई बहुत सी भूमि बिना जोती ही रह जाती है क्योंकि यह जमीन ऊबड़–खाबड़, पथरीली व सिंचाई के किसी स्रोत से दूर होती है। ऐसी स्थिति में यदि देश के लाखों दलित व कमजोर परिवारों को सफल किसान बनते का अवसर देना है तो इसके लिए अभियान चलाने होंगे, भूमि की पैमाइश व पहचान की विशेष व्यवस्था करनी होगी, अवैध अतिक्रमणों को हटाना होगा व गांवों में ऐसी सुरक्षा का माहौल बनाना होगा कि दलित परिवार उस जमीन को जोत सकें जो उन्हें आवंटित की गई है। इसके अलावा समतलीकरण,

**राष्ट्रीय स्तर पर लाखों दलित व अन्य कमजोर वर्ग के परिवार हैं जिन्हें सरकारी कागजों में तो जमीन का पट्टा मिल चुका है पर व्यावहारिक स्तर पर वे भूमिहीन हैं क्योंकि वे भूमि के पट्टे पर वास्तव में कब्जा नहीं कर पाए हैं। ऐसे परिवारों को प्रायः दोहरी सजा झेलनी पड़ती है।**

मेढ़बंदी व लघु सिंचाई जैसी जरूरी सहायता उपलब करवा कर ऐसी स्थितियां उत्पन्न की जाएं जिसमें पथरीली, ऊबड़–खाबड़ व सूखी भूमि में भी फसल लहलहा सके।

ऐसा ही एक प्रेरणादायक उदाहरण हाल के समय में बांदा जिले (उत्तर प्रदेश) ने नेडुवा बड़ैछा गांव में उपस्थित किया गया है। यहां कुछ दलित परिवारों के लिए तो बहुत कठिन स्थिति थी क्योंकि उन्हें जो भूमि दी गई थी वह बीहड़ व टीलों वाली थी। इसके बावजूद उसे खेती योग्य बनाया गया व वहां आज दलित किसानों की मेहनत से गेंहू, चना, अरहर समेत विविध सब्जियों आदि से खेत हरे–भरे हैं।

पांच वर्ष पहले तक ऐसी अधिकांश आवंटित भूमि पर अव्वल तो खेती नहीं हो रही थी या नहीं के बराबर हो रही थी। चूंकि बीहड़ या टीलेनुमा खेतों में फसल के अवसर बहुत कम थे अतः इस ओर दलित व कमजोर वर्ग के परिवार ज्यादा ध्यान नहीं देते थे और पेट भरने के लिए दूरदूर के क्षेत्रों में पलायन करते थे जहां प्रवासी मजदूर के रूप में उन्हें बहुत कष्ट सहने पड़ते थे। बहुत शोषण होता था पर मजबूरी के कारण लगभग हर वर्ष प्रवास करते थे। इस स्थिति में यहां बुंदेलखंड की एक विख्यात संस्था अखिल भारतीय समाज सेवा संस्थान ने सर दोराबजी टाटा ट्रस्ट के सहयोग से एक वाटरशेड कार्यक्रम आरंभ किया जिसके पहले चरण में विशेष अभियान चलाकर प्रशासन से पट्टों की उचित पहचान व पैमाइश करवाई। इस तरह विभिन्न दलित परिवारों को यह सुनिश्चित हो गया है कि यह उनका पट्टा है और वे उस पर अधिक मेहनत के लिए वे तत्पर हो गए।

इसके बाद भूमि समतलीकरण व बांधीकरण का अभियान चलाया गया जिससे टीले व बीहड़ भी ऐसे अच्छे खेतों का रूप लेने लगे जहां मिट्टी व जल संरक्षण की उचित व्यवस्था थी। इसके बाद पास के नदी व नाले से लिफ्ट सिंचाई माध्यम से दूर–दूर के खेतों में पानी पंहुचाने की व्यवस्था की गई। चुनौती कठिन थी, फिर भी मेहनत और ईमानदारी के बल पर अपेक्षाकृत कम खर्च में ही यह सब कार्य हो सके। परियोजना के सीमित साधनों में अधिकतम भूमि को हरा–भरा किया गया, पर अभी शेष भूमि व आसपास के अन्य गांवों की चुनौती सामने है।

**हाल में जन सत्याग्रह यात्रा के दौरान हुए समझौते से भूमि सुधार व भूमि वितरण आंदोलन को नई दिशा मिली है इससे भविष्य में ग्रामीण भूमिहीनों विशेषकर दलित परिवारों में भूमि वितरण का कार्य जोर पकड़ेगा। यानी यह भूमि वितरण के सही नियोजन के प्रयास तेज किए जाने का उचित समय है। पहले जैसी गलती न हो कि सिंचाई व मेढबंदी के अभाव में भूमि पाने वालों की जमीन बंजर ही रह जाए।**

उत्तर प्रदेश शासन के उच्चाधिकारियों ने प्रयोग से प्रभावित होकर इसे व्यापक स्तर पर अपनाने के बारे में विमर्श शुरू किया है। सरकार के प्रयास में भ्रष्टाचार का घुन न लगे तो यह प्रयोग अधिक व्यापक स्तर पर सफल हो सकता है। बिहारी कोरी के चेहरे पर चमक है क्योंकि वह अपने पट्टे की जमीन में 11 सदस्यीय परिवार के लिए वर्ष भर का अनाज उत्पन्न कर रहा है, साथ में मूंगफली की नकद फसद भी। उसने 17000 रुपए की मूंगफली बेची।

बिहारी कोरी ने कहा कि अब पहले की अपेक्षा चार गुणा फसल का उत्पादन बढ़ने की संभावना है। झुनिया सुकून में है कि अब उसे पति व बच्चों के साथ दिल्ली की सड़कों पर असहाय हालत में नहीं रहना पड़ेगा क्योंकि वह अपने खेत में गेंहू, मूंग, चना व मूंगफली की फसलें उगा परिवार की भोजन व नकदी दोनों जरूरतें पूरा कर रही है। रतिराम ने तो एक वर्ष में तीन फसल लेकर दिखा दिया है कि अवसर मिले तो दलित सफल किसान बन सकते हैं। इस तरह की परियोजनाओं व प्रयासों का प्रसार अधिक व्यापक स्तर पर हो तो भविष्य में दलित व कमजोर वर्ग के ग्रामीणों को सफल किसान बनाया जा सकता है।

एक महत्वपूर्ण सावधानी यह होनी चाहिए कि पर्यावरण रक्षा के अनुकूल व आत्म–निर्भरता बढ़ाने वाली सस्ती तकनीकों को प्रोत्साहित किया जाए। हाल में जन सत्याग्रह यात्रा के दौरान हुए समझौते से भूमि–सुधार व भूमि वितरण आंदोलन को नई दिशा मिली है इससे भविष्य में ग्रामीण भूमिहीनों विशेषकर दलित परिवारों में भूमि वितरण का कार्य जोर पकड़ेगा। यानी यह भूमि वितरण के सही नियोजन के प्रयास तेज किए जाने का उचित समय है। पहले जैसी गलती न हो कि सिंचाई व मेढबंदी के अभाव में भूमि पाने वालों की जमीन बंजर ही रह जाए। भूमि के हकदारों को समतलीकरण व मेढ़बंदी के साथ लघु सिंचाई की सुविधा मिलनी चाहिए। साथ ही कि इन परिवारों को पर्याप्त सुरक्षा उपलब्ध करायी जाए ताकि दबंग व सामंती मानसिकता उन्हें भू–स्वामित्व से बेदखल न कर दे। ❑

# निर्भया! तूने जगाया सोया भारत

**'निर्भया' औद 'दामिनी' तो उसके दिए हुए नाम हैं. . .बलिया में जन्मी गरीब परिवार की यह लड़की भारत की सभी महिलाओं के लिए उसी तरह प्रेरणा की स्रोत बननी चाहिए, जिस तरह महारानी लक्ष्मीबाई, दुर्गावती या अहिल्याबाई बनी हैं। सारे देश में भारत मां की इस महान बेटी के स्मारक बनने चाहिए, जो कि किसी भी संभावित बलात्कारी के लिए मौत की घंटी की तरह बजते रहें। बलात्कारियों के लिए ये मौत की घंटी तभी बनेंगे, जबकि दामिनी के बलात्कारियों को अविलंब मौत की सजा दी जाए।**

**■ डॉ. वेदप्रताप वैदिक**

उसे निर्भया कहें या दामिनी? वह हमेशा के लिए सो गई लेकिन उसने भारत को जगा दिया। हजारों बलात्कार हर वर्ष होते हैं लेकिन वे हमारी राजनीति के नक्कारखाने में तूती की तरह खो जाते हैं। जितने बलात्कारों का पता चलता है, उनसे कहीं ज्यादा पर मौन का ताला जड़ दिया जाता है। यह बलात्कार दिल्ली में हुआ, चलती बस में हुआ और निर्भया ने उसका मुकाबला वीरांगना की तरह किया। जरा कल्पना करें कि उन बलात्कारियों पर निर्भया कितनी बहादुरी से दामिनी की तरह टूट पड़ी होगी कि उसे काबू करने के लिए उन नर–पशुओं को उसकी आंतड़ियां निकालनी पड़ीं। यह जघन्य कृत्य भी अनजाना ही रह जाता, अगर लाखों लोग केरल से कश्मीर तक मैदान में नहीं उमड़ पड़ते।

'निर्भया' औद 'दामिनी' तो उसके दिए हुए नाम हैं। अब उसके असली नाम को छिपाने की जरुरत क्या है? बलिया में जन्मी गरीब परिवार की यह लड़की भारत की सभी महिलाओं के लिए उसी तरह प्रेरणा की स्रोत बननी चाहिए, जिस तरह महारानी लक्ष्मीबाई, दुर्गावती या अहिल्याबाई बनी हैं। सारे देश में भारत मां की इस महान बेटी के स्मारक बनने चाहिए, जो कि किसी भी संभावित बलात्कारी के लिए मौत की घंटी की तरह बजते रहें। बलात्कारियों के लिए ये मौत की घंटी तभी बनेंगे, जबकि दामिनी के बलात्कारियों को अविलंब मौत की सजा दी जाए।

**सजा अगर साल–दो साल या पांच–दस साल बाद मिलती है तो हमें मानना होगा कि निर्भया का बलिदान व्यर्थ गया। जॉन स्टुअर्ट मिल का यह कथन लागू हो जाएगा कि देर से किया गया न्याय तो अन्याय ही है। यह निर्भया की बहादुरी का अपमान होगा और देश के करोड़ों लोगों के आक्रोश की बेशर्म उपेक्षा होगी। इस देशव्यापी तूफान को उठे दो सप्ताह बीत गए, उन हत्यारों को सजा के कोई आसार अभी नजर नहीं आ रहे हैं।**

**सरकार बला टालने में लगी हुई है। इसीलिए शीर्ष पर जमे लोग अंत्येष्टि में शामिल हो गए। अंत्येष्टि का प्रचार न हो लेकिन उनके शामिल होने का प्रचार जरुर हो! वाह, हमारे 'सेवकों' की भी क्या अदा है? इनसे बेहतर तो दिल्ली की मुख्यमंत्री शीला दीक्षित का सत्साहस रहा। उन्होंने निर्भया के अंतिम बयान में धांधली करने वाली पुलिस के खिलाफ खुले–आम शिकायत की। किसी सच्चे और सहृदय नेता की तरह वे इंडिया गेट भी पहुंचीं।**

यह सजा अगर साल–दो साल या पांच–दस साल बाद मिलती है तो हमें मानना होगा कि निर्भया का बलिदान व्यर्थ गया। जॉन स्टुअर्ट मिल का यह कथन लागू हो जाएगा कि देर से किया गया न्याय तो अन्याय ही है। यह निर्भया की बहादुरी का अपमान होगा और देश के करोड़ों लोगों के आक्रोश की बेशर्म उपेक्षा होगी। इस देशव्यापी तूफान को उठे दो सप्ताह बीत गए, उन हत्यारों को सजा के कोई आसार अभी नजर नहीं आ रहे हैं। अभी तक सरकार की पुलिस उन नारीभक्षियों के विरूद्ध आरोप–पत्र भी दाखिल नहीं कर सकी है। लोग कहते हैं कि बलात्कारियों को नपुंसक बना दें। मैं पूछता हूँ कि क्या हमारी सरकार स्वयं नपुंसक नहीं बनी हुई है? एक नपुंसक किसी और को नपुंसक कैसे बना सकता है?

इस मामले में हमारी सरकार का रवैया आत्मघाती रहा है। इस सरकार को 'हमारी' हम कैसे कहें? यह तो पराई सरकार से भी बदतर है। यह भारत की जनता को 'पराया' समझती है। उसका साथ देने की बजाय उसका विरोध करती है। इसीलिए इसने पिछले साल रामलीला मैदान में रावण–लीला मचाई और इस साल इंडिया गेट और जंतर–मंतर पर दुबारा लट्ठ बरसाए। बाबा रामदेव, पूर्व सेनापति वी.के. सिंह और मुझे गिरफ्तार कर लिया गया। हम हजारों साथियों को लेकर वहां क्यों गए थे? सरकार का विरोध करने नहीं बल्कि उसका मनोबल बढ़ाने के लिए। हमारे अधमरे नेताओं में जान फूंकने के लिए ताकि वे नींद से जगें और बलात्कारियों के विरुद्ध कठोरतम कार्रवाई तुरंत करें।

करोड़ों लोगों की भावना का सम्मान करना तो दूर रहा हमारे चुने हुए सेवकों की इस सरकार ने निहत्थी जनता पर लट्ठ बरसाकर यह सिद्ध किया कि वह जनता के विरुद्ध है (याने बलात्कारियों के साथ है)। इस सरकार ने लोकतंत्र को पुलिस तंत्र में बदल दिया। इतनी डरपोक तो ब्रिटिश सरकार भी नहीं थी। दो–तीन वर्ग कि.मी. नई दिल्ली के इस छोटे–से 'शाही–क्षेत्र' की रक्षा के लिए 18 हजार जवानों को झोंक देना आखिर किस बात का सबूत है? क्या यह अनैतिक बल–प्रयोग नहीं है? भ्रष्टाचार, अत्याचार और बलात्कार तीनों एक साथ!!!

मेरी यह बात नेताओं को समझ में तो आई लेकिन बहुत देर से! नींद में थे। कुंभकर्ण की! अचानक उठे और किसी अफसर का लिखा बयान पढ़ दिया और पूछ भी लिया, 'ठीक रहा न!' निर्भया को सिंगापुर भेज दिया। पता नहीं, किसकी जान बचानी थी? निर्भया की या सरकार की? निर्भया की अंत्येष्टि भी भयभीत

## जनांदोलन बनेगा जन चेतना की लहर

देश की राजधानी में गैंगरेप की जो धिनौनी घटना हुई, वह बहुत अफसोसजनक थी, इसलिए इसके विरोध में जो उग्रता दिखी। यह उसके खिलाफ मेरी राय में युवाओं का बहुत स्वाभाविक आक्रोश था। सिर्फ इतना ही नहीं, इस आक्रोश के पीछे सुलग रही कई और चिंगारियां भी थी। जरूरी मुद्दों के बारे में राजनीतिक उदासीनता के कारण देश का युवा परेशान है, त्रस्त है। यह सबसे बड़ा कारण है इसका। और भी कई कारण हैं, जिनमें आर्थिक गिरावट एक बहुत बड़ी वजह है।

आज पांच प्रतिशत विकास दर से देश की जनता की आकांक्षाएं पूरी नहीं हो सकती। देश को इससे कहीं बेहतर विकास दर चाहिए। वहीं दूसरी ओर जॉब मार्केट की जरूरत भी 20 प्रतिशत के ऊपर हो गई है। हमारे देश में 65 प्रतिशत लोग ऐसे हैं, जिनकी आयु 35 वर्ष से कम है। उन्हें आर्थिक विकास चाहिए, सुरक्षा चाहिए।

युवा यह भी देखता है कि अकसर संसद के पूरे सत्र हंगामे के कारण रद्द हो जाते हैं और कई जरूरी मुद्दों पर कोई महत्वपूर्ण निष्कर्ष सामने नहीं आ पाता।

चूंकि आज का युवा राजनीतिक चेतना संपन्न भी है, इसलिए ऐसे कई मुद्दे रहे हैं जो लम्बे समय से युवाओं के दिमाग में थे और इस घटना के कारण जो आकांक्षाएं युवाओं के दिमाग में उबल रही थीं, वह फूट कर बाहर आ गई है।

**– पवन वर्मा (समाजशास्त्री)**

होकर की गई। उसकी अंत्येष्टि यदि निर्भयतापूर्वक की जातीं तो सारे देश का संकल्प बलात्कार के विरुद्ध अधिक सुदृढ़ होता। लेकिन सरकार बला टालने में लगी हुई है। इसीलिए शीर्ष पर जमे लोग अंत्येष्टि में शामिल हो गए। अंत्येष्टि का प्रचार न हो लेकिन उनके शामिल होने का प्रचार जरुर हो! वाह, हमारे 'सेवकों' की भी क्या अदा है? इनसे बेहतर तो दिल्ली की मुख्यमंत्री शीला दीक्षित का सत्साहस रहा। उन्होंने निर्भया के अंतिम बयान में धांधली करनेवाली पुलिस के खिलाफ खुले–आम शिकायत की। किसी सच्चे और सहृदय नेता की तरह वे इंडिया गेट भी पहुंचीं।

**डरी हुई सरकार, जो कुछ कर सकती है, उसने वह किया। आयोग बिठाया, निर्भया को सिंगापुर भिजवाया, अंत्येष्टि में शामिल हुई, बयान जारी किए। अब वह प्रतीक्षा कर रही है कि जैसे अन्ना का ज्वार शीघ्र ही भाटे में बदल गया है, वैसे ही निर्भया का बुखार भी जल्दी ही उतर जाएगा लेकिन वह यह नहीं देख पा रही है कि जनता के मौन क्रोध की स्थायी जमा राशि लगातार बढ़ती जा रही है। अब न कोई लोहिया है, न जयप्रकाश न विश्वनाथ प्रताप सिंह! अब लोगों को किसी की जरुरत नहीं है।**

अ–नेताओं याने अनाड़ी नेताओं की डरी हुई सरकार, जो कुछ कर सकती है, उसने वह किया। आयोग बिठाया, निर्भया को सिंगापुर भिजवाया, अंत्येष्टि में शामिल हुई, बयान जारी किए। अब वह प्रतीक्षा कर रही है कि जैसे अन्ना का ज्वार शीघ्र ही भाटे में बदल गया है, वैसे ही निर्भया का बुखार भी जल्दी ही उतर जाएगा लेकिन वह यह नहीं देख पा रही है कि जनता के मौन क्रोध की स्थायी जमा राशि लगातार बढ़ती जा रही है। अब न कोई लोहिया है, न जयप्रकाश न विश्वनाथ प्रताप सिंह! अब लोगों को किसी की जरुरत नहीं है। वे अपने आप उठ खड़े होते हैं। बस, जरा–सी चिनगारी दिखनी चाहिए। उसे ज्वाला बनने में देर नहीं लगती। ऐसा नहीं है कि इस ज्वाला की तपन कुर्सियों में जमे ये अ–नेता महसूस नहीं कर रहे हैं। वे कर रहे हैं और जमकर कर रहे हैं लेकिन वे मजबूर हैं। वे किसी ज्वाला में से कभी नहीं गुजरे। वे इतिहास के धक्के की करामात हैं। वे इतिहास के धक्के से ऊपर आए हैं। उन्हें जनता का धक्का धराशायी करेगा। ❑

# विश्व के कुछ प्रसिद्ध आन्दोलन

## फ्रांस का छात्र आन्दोलन (1968)

फ्रांस के इतिहास में इस आंदोलन की काफी महत्वपूर्ण भूमिका थी। इस आंदोलन में ग्यारह लाख कर्मचारियों और छात्रों ने हिस्सा लिया, जो पूरी फ्रांस की जनसंख्या का 22 प्रतिशत था। इस आंदोलन की शुरुआत पेरिस के विश्वविद्यालय से हुई थी। तब फ्रांसीसी राष्ट्रपति चार्ल्स डि गॉल को भाग कर जर्मनी में शरण लेनी पड़ी थी।

## चिपको आंदोलन (1973)

वनों की कटाई के विरोध में शुरू हुए इस आंदोलन में लोगों ने पेड़ों के साथ चिपक कर उनकी रक्षा की थी। चमोली जिले (उत्तराखण्ड) से आरंभ हुआ यह आंदोलन धीरे–धीरे पूरे उत्तराखण्ड में फैल गया था। इस आन्दोलन का नेतृत्व सुंदरलाल बहुगुणा ने किया था।

## थ्येन आनमन स्क्वेयर प्रोटेस्ट (1989)

चीन के बीजिंग में हुए इस आंदोलन को जून फोर्थ इंसिडेंट के नाम से भी जाना गया है। इस आंदोलन का नेतृत्व छात्रों द्वारा किया गया, और उसके बाद बड़ी संख्या में स्थानीय नागरिकों ने भी हिस्सा लिया। यह आंदोलन इकोनॉमिक रिफार्म, लोकतंत्र और राजनीतिक भ्रष्टाचार जैसे मामलों को लेकर हुआ लेन चीन सरकार के दमनकारी नीतियों के वजह से समाप्त हो गया था।

## मंडल कमीशन प्रोटेस्ट (1990)

मंडल कमीशन के खिलाफ हुए प्रदर्शनों को स्वतः स्फूर्त विरोध के रूप में देखा जाता है। सरकार द्वारा सरकारी नौकरियों में मेरिट की अपेक्षा जाति के आधार पर प्राथमिकता देने के विरोध में देशभर के छात्र आंदोलन पर उतर आए। इसमें आत्मदाह जैसी घटनाएं भी हुई। आंदोलन काफी लंबा खिंचा और अभी भी यदाकदा इसकी चिंगारियां देखने को मिलती है।

# आक्रोश से जगी उम्मीद

**जब दामिनी की मौत पर पूरे देश में स्वतः स्फूर्त संवेदनशील प्रदर्शनों की कड़ियां बनती गई। इनमें एक साथ मृतका के प्रति श्रद्धांजलि, स्वयं के प्रति इस बात की ग्लानि कि हम सबके रहते ऐसा कैसे हो गया, व्यवस्था के प्रति गुस्सा और ऐसा न होने देने का संकल्प प्रकट हो रहा है। शायद दुनिया के लिए भी किसी एक गैंगरेप पीड़िता की मौत पर ऐसी स्थिति पहली बार पैदा हुई है। जब जनता के स्तर पर इतना व्यापक संवेदनशील उद्वेलन हो तो फिर शासन और राजनीतिक प्रतिष्ठान कैसे मूकदर्शक रह सकता है।**

**■ अवधेश कुमार**

सच कहें तो दामिनी की सांसों और धड़कनों को केवल आधुनिक चिकित्सा यंत्रों और शल्य क्रियाओं के सहारे जारी रखा गया था। अन्यथा, उसकी मृत्यु की घोषणा केवल औपचारिकता थी। उन वहशी दरिंदों ने उसके शरीर को जिस तरह जंगली जानवरों से भी बुरी हालत में तोड़–मरोड़–निचोड़ दिया था, उसमें उसके पूर्व अवस्था में वापस लाए जाने की कोई संभावना नहीं थी। कई बार सफदरजंग अस्पताल के डॉक्टर इसका संकेत दे चुके थे, लेकिन फिर भी मनुष्य होने के नाते हम अंतिम समय तक बेहतरी और चमत्कार की उम्मीद करते हैं। ऐसा न करें तो फिर जीने और सक्रिय रहने का ही आधार खत्म हो जाए।

जरा सोचिए, जिसकी आंतें पूरी तरह नष्ट हो गई हों, लिवर और गुर्दे तक जख्मी हों, छाती कुचल दी गई हो, वह कैसे एक स्वाभाविक मनुष्य के रूप में लौट सकती थी। वस्तुतः जितने दिनों तक वह जिंदा रहती, स्वयं उसे तो असीम कष्ट झेलना ही पड़ता, उसके परिवार के लिए हर क्षण कष्ट, परेशानी और संत्रास का क्षण होता। इसलिए उसकी मृत्यु को हमें कष्ट से मुक्ति के रूप में लेनी चाहिए। किंतु उसकी यह अवस्था स्वाभाविक नहीं थी और यही हमें अंदर से हिला रहा है।

**हम उस मां को यह सुनिश्चित आश्वासन देने की स्थिति में हैं कि आपकी बेटी का बलिदान व्यर्थ नहीं जाएगा और आगे कोई ऐसी क्रूरता की शिकार नहीं होगी? सामूहिक आक्रोश के वातावरण में हम ऐसा आश्वासन दे भी सकते हैं, पर यह इतना आसान नहीं। सरकारी महकमे की जड़ हो चुकी भ्रष्ट संवेदनशील चरित्र का अंत किसी छूमंतर से नहीं हो सकता। सरकारें उन महकमों पर ही निर्भर हैं और यथास्थिति बना रहना उन्हें जोखिमरहित लगता है, जबकि आवश्यकता विधान, प्रक्रिया और चरित्र में आमूल बदलाव की है।**

उसकी ऐसी दुर्दशा जिन लोगों ने जिस व्यवस्था में की, वह निस्पंद, निष्क्रिय और निराशा की अंतिम मनोस्थिति में पहुंचे व्यक्ति के अंदर भी उद्वेलन पैदा कर रहा है।

वास्तव में यह ऐसी स्थिति हैं, जिसमें विवेक और संतुलन बनाकर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए शब्द छोटे पड़ रहे हैं। यह अभूतपूर्व स्थिति है, जब दामिनी की मौत पर पूरे देश में स्वतः स्फूर्त संवेदनशील प्रदर्शनों की कड़ियां बनती गई। इनमें एक साथ मृतका के प्रति श्रद्धांजलि, स्वयं के प्रति इस बात की ग्लानि कि हम सबके रहते ऐसा कैसे हो गया, व्यवस्था के प्रति

गुस्सा और ऐसा न होने देने का संकल्प प्रकट हो रहा है। शायद दुनिया के लिए भी किसी एक गैंगरेप पीड़िता की मौत पर ऐसी स्थिति पहली बार पैदा हुई है। जब जनता के स्तर पर इतना व्यापक संवेदनशील उद्वेलन हो तो फिर शासन और राजनीतिक प्रतिष्ठान कैसे मूकदर्शक रह सकता है। चेतना पहले जग जाती भारत के राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी तक ने विस्तृत शोक संदेश के साथ दामिनी की मौत को जाया न होने देकर आगे इसकी पुख्ता कार्रवाई का विश्वास दिलाया ताकि फिर कोई दामिनी न बन सके। इसके साथ अपने–अपने संबोधन में देशवासियों से शांति बनाए रखने की भी अपील की। शायद ही किसी दल की ओर से इस पर अपनी संवेदनशील प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की गई हो।

हालांकि इस पूरे प्रकरण का कुछ क्रूर और संवेदनहीन सच गम और क्षोभ के देशव्यापी माहौल में टीस भी पैदा कर रहा है। आखिर सरकार और राजनीतिक प्रतिष्ठान की चेतना पहले दिन क्यों नहीं जगी? क्यों नहीं सरकार का कोई मान्य अधिकृत प्रतिनिधि सड़कों पर उतरे आक्रोशित युवाओं से बात करने आया? क्यों उनके विरोध से निपटने का जिम्मा मुख्यतः पुलिस को दिया गया और फिर नेतृत्वविहीन प्रदर्शन उग्रता का शिकार हुआ? सबसे बढ़कर हमारे प्रधानमंत्री को घटना के आठ दिनों बाद देश को संबोधित करने का अहसास कैसे हुआ?

**हालांकि इस पूरे प्रकरण का कुछ क्रूर और संवेदनहीन सच गम और क्षोभ के देशव्यापी माहौल में टीस भी पैदा कर रहा है। आखिर सरकार और राजनीतिक प्रतिष्ठान की चेतना पहले दिन क्यों नहीं जगी? क्यों नहीं सरकार का कोई मान्य अधिकृत प्रतिनिधि सड़कों पर उतरे आक्रोशित युवाओं से बात करने आया? क्यों उनके विरोध से निपटने का जिम्मा मुख्यतः पुलिस को दिया गया और फिर नेतृत्वविहीन प्रदर्शन उग्रता का शिकार हुआ? सबसे बढ़कर हमारे प्रधानमंत्री को घटना के आठ दिनों बाद देश को संबोधित करने का अहसास कैसे हुआ?**

जैसा आचरण उनका अब दिख रहा है, अगर 18–19 दिसंबर तक दिखा होता तो देश को आश्वासन मिलता और फिर इस तरह हमारे आपके अंदर क्षोभ और टीस पैदा नहीं होती। जाहिर है, इसका उत्तर हमें सरकार या राजनीतिक प्रतिष्ठान की ओर से नहीं मिलेगा। वस्तुतः वर्तमान राजनीतिक प्रतिष्ठान से यह उम्मीद ही अव्यावहारिक होगी।

यह इस भयावह सच को ही साबित करता है कि लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था होते हुए भी सत्ता प्रतिष्ठान समुच्चय रूप में धीरे–धीरे जन मनोविज्ञान से कटता अपने बनाए ढांचे के ऐसे प्रतिरक्षित घेरे में बंध रहा है, जहां स्वतः स्पंदनशीलता की संभावना निशेष होती गई है। इसलिए यदि प्रधानमंत्री, कांग्रेस अध्यक्ष नारी सम्मान और एक–एक लड़की की आबरू रक्षा का संकल्प दोहराते हैं तो देश आश्वस्त नहीं होता। कारण, सरकारों द्वारा निर्मित व्यवस्था के धरातली सच का आम अनुभव इसके विपरीत है।

अगर दामिनी के साथ इस तरह की दरिंदगी न होती और वह 13 दिनों तक जीवन और मौत से जूझती इस दुनिया को अलविदा नहीं कहती तो कोई मंत्री या अधिकारी सहसा यह स्वीकार करने को तैयार भी नहीं होता कि कानून व्यवस्था का ऐसा दर्दनाक माखौल है या लड़कियों–महिलाओं के साथ सरेआम ऐसी दरिंदगी हो रही है या पुलिस उनकी कॉल को अनसुनी करती है या निजी वाहन चालकों का व्यवहार इतना खूंखार है।

**अगर दामिनी के साथ इस तरह की दरिंदगी न होती और वह 13 दिनों तक जीवन और मौत से जूझती इस दुनिया को अलविदा नहीं कहती तो कोई मंत्री या अधिकारी सहसा यह स्वीकार करने को तैयार भी नहीं होता कि कानून व्यवस्था का ऐसा दर्दनाक माखौल है या लड़कियों–महिलाओं के साथ सरेआम ऐसी दरिंदगी हो रही है या पुलिस उनकी कॉल को अनसुनी करती है या निजी वाहन चालकों का व्यवहार इतना खूंखार है।**

क्या हमारे नीति–निर्माता यह मानते हैं कि दामिनी का मामला अपवाद के रूप में सामने आया है? कतई नहीं। भले अन्य लड़कियां–महिलाएं दामिनी के समान मृत्यु का शिकार नहीं होतीं, लेकिन उनका उत्पीड़न तो आम अनुभव की बात है। सच यह है कि दामिनी की बलि ने व्याप्त भयानकता को वीभत्स रूप में हमारे सामने लाया है और अपने स्वार्थो की परिधि में दुबकने को मजबूर समाज के अगुवा मध्यम वर्ग के साथ शासन को भी झकझोर रहा है।

दामिनी की मां ने कहा है कि उनकी

बेटी की मौत से यदि दिल्ली और देश की बेटियों के भविष्य बेहतर होते हैं तो उनका दुख कम होगा। क्या हम उस मां को यह सुनिश्चित आश्वासन देने की स्थिति में हैं कि आपकी बेटी का बलिदान व्यर्थ नहीं जाएगा और आगे कोई ऐसी क्रूरता की शिकार नहीं होगी? सामूहिक आक्रोश के वातावरण में हम ऐसा आश्वासन दे भी सकते हैं, पर यह इतना आसान नहीं। सरकारी महकमे की जड़ हो चुकी भ्रष्ट संवेदनशील चरित्र का अंत किसी छूमंतर से नहीं हो सकता। सरकारें उन महकमों पर ही निर्भर हैं और यथास्थिति बना रहना उन्हें जोखिमरहित लगता है, जबकि आवश्यकता विधान, प्रक्रिया और चरित्र में आमूल बदलाव की है।

आक्रोश के बीच कुछ प्रश्न इस समय के संपूर्ण राजनीतिक प्रतिष्ठान से हम इसकी उम्मीद नहीं कर सकते। तो फिर जिम्मेवारी हम नागरिक समाज के ऊपर ही आती है। वैसे भी दामिनी की त्रासदी को केवल कुछ राक्षसों द्वारा एक लड़की के साथ वहशी यौन और शारीरिक दुराचार तक सीमित मानना इसका अत्यंत ही सरलीकरण करना है। उसके साथ यह हमारी समूची सामाजिक, सांस्कृतिक पतन–गलन की परिणति है। क्या हम उतनी दूर की सोच रहे हैं? क्या हमारा यह स्वाभाविक उद्वेलन उस आमूल बदलाव के लक्ष्य तक जाने के लिए बाध्यकारी संयत सक्रिय सामूहिक दबाव का आधार बन सकता है? यह ऐसा प्रश्न है, जिसका उपयुक्त उत्तर हमें ही देना है।

**युवाओं का जज्बा उम्मीद अवश्य पैदा करता है, पर इसे यदि व्यापक बदलाव की दिशा में नहीं मोड़ा गया तो फिर यह निष्फल हो जाएगा।**

वास्तव में सरकार हम बनाते हैं तो उसे उसकी जिम्मेवारी पालन करने के लिए विवश करना भी हमारा ही दायित्व है। सरकारें यानी राजनीतिक प्रतिष्ठान और अधिकारी, कर्मचारी अपने दायित्व का पालन नहीं कर रहे तो नागरिक समाज के नाते मुख्यतः हम ही इसके लिए दोषी हैं। हमारा आक्रोश बिल्कुल वाजिब है, लेकिन यह आक्रोश हमारे स्वयं के खिलाफ भी होना चाहिए। जरा सोचिए, हम स्वयं जिस जीवनशैली के पक्षधर बन गए हैं और जिसे अपना रहे हैं, उसमें व्यवस्था के प्रति सोच और सक्रियता, अन्याय के अंत के लिए संगठित सक्रियता और स्वयं समाज के क्षरण को रोकने की गतिशीलता के लिए कितनी गुंजाइश बची हुई है? यह आक्रोश और उद्वेलन तथा पुलिस द्वारा पानी की बौछारों, आंसू गैस के गोलों के सामने एक–दूसरे के गले मिलकर डटकर खड़े होते युवाओं का जज्बा उम्मीद अवश्य पैदा करता है, पर इसे यदि व्यापक बदलाव की दिशा में नहीं मोड़ा गया तो फिर यह निष्फल हो जाएगा। ❑

## :: सूचना ::

**स्वदेशी पत्रिका सम्राज्यवाद के खिलाफ एक सशक्त आवाज है। पत्रिका को ऐसे लोगों से प्रतिक्रियाएं, रिपोर्ट या आलेख की अपेक्षा है जो राष्ट्रहित में सोचते हैं और देश के स्वावलम्बन के लिए कुछ करने की इच्छा रखते है। जरूरी नहीं कि आप पत्रकार या लेखक ही हों, अपने आसपास से जुड़ी चीजों के प्रति आपकी संवदेना है और आप शब्दों में उसे लिख सकते है तो हमें अवश्य लिख भेजें। साथ ही स्वदेशी पत्रिका में छपे लेख आपको कैसे लगते हैं, क्या आप इसमें कुछ नए विषयों का समायोजन चाहते हैं कृपया हमें अवश्य अवगत कराएं। आपके विचारों को हम प्राथमिकता के साथ प्रकाशित करने का भी प्रयास करेंगे।**

**हमारा पता है :–**

**संपादक**

**स्वदेशी पत्रिका**

'धर्मक्षेत्र', सेक्टर–8, बाबू गेनू मार्ग, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022

गरीबी

# जो सो रहे हैं गरीबी ओढ़कर

**दिल्ली में हर वर्ष भूख, बेबसी और बीमारी से करीब चार हजार लोग बेमौत मर जाते हैं, जिनके सिर पर कोई छत नहीं होती। पिछले साल दिल्ली उच्च न्यायालय ने शीला दीक्षित सरकार को निर्देश दिया था कि दिल्ली में फुटपाथ पर सोने वाले बेघरों के लिए रैन बसेरों के इंतजाम की ठोस योजना न्यायालय में प्रस्तुत की जाए। अदालत ने यह भी जानना चाहा कि राज्य सरकार ऐसा क्यों कहती है कि रैन बसेरों में लोग नहीं आ रहे हैं, जबकि प्रायः लोग सड़कों और फुटपाथों पर रात में सोते हुए देखे जा सकते हैं।**

**■ अभिषेक रंजन सिंह**

दुनिया में सबसे अधिक सर्दी यूरोपीय देशों में पड़ती है, लेकिन ठंड से मरने वालों की संख्या भारत में अधिक है। सबसे ज्यादा गर्मी अफ्रीकी देशों में पड़ती है, लेकिन लू से मरने वाले भी भारत में ही अधिक हैं। सबसे ज्यादा बारिश भू–मध्यरेखीय देशों में होती है, लेकिन बाढ़ से सर्वाधिक मौतें भारत में होती हैं। क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत सबसे बड़े देशों में शुमार होता है, लेकिन भूमिहीनों और बेघरों की संख्या भी यहीं सबसे अधिक है।

यह देश दुग्ध उत्पादन में दूसरे स्थान पर है, लेकिन कुपोषण के चलते हर साल हजारों बच्चे दम तोड़ देते हैं। इस देश में अनाज का उत्पादन भी सबसे अधिक होता है, लेकिन भूख से मरने वालों की संख्या यहीं सबसे अधिक है। विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र का स्याह पक्ष यही है कि यहां जनतंत्र जनता के लिए नहीं, बल्कि राजनेताओं और नौकरशाहों के लिए सबसे ज्यादा अनुकूल है।

राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में भीषण सर्दी पड़ रही है, अगर आप प्रधानमंत्री, मंत्रियों, सांसदों और अधिकारियों के बंगलों से दूर फ्लाईओवरों के इर्द–गिर्द और फुटपाथों पर निगाह डालें तो कई जिंदगियां खुले आसमान तले सोने को विवश हैं। बेसहारा–बेघर लोगों की इस हालत का जिम्मेदार कौन है? इस सवाल का कोई मुकम्मल जबाव हमारे देश में नियम कायदे बनाने वालों के पास नहीं है।

**दिल्ली तो सिर्फ इसका एक उदाहरण मात्र है, जहां कहने को आम जनता के लिए नीतियां बनाई जाती हैं। बेघरों को जब भी आश्रय देने की बात होती है तो सरकार जमीन की कमी का रोना रोती है। दूसरी तरफ बड़े–बड़े शॉपिंग मॉल, सिनेमाघर और फाइव स्टार होटल बनाने वालों को वही सरकार खुले हाथों जमीन मुहैया कराती है। अगर उसकी राह में झुग्गी–झोपड़ियां बाधा बनती हैं तो उन्हें उजाड़ने में जरा भी देर नहीं की जाती।**

पिछले दिनों पुरानी दिल्ली रेलवे स्टेशन पर देर रात ट्रेन से उतरा। स्टेशन परिसर के बाहर फुटपाथ पर कई लोग हाथ–पांव सिकोड़े गहरी नींद में सोए हुए थे। उनके अगल–बगल कुछ कुत्ते भी आराम कर रहे थे। वहां यह दृश्य देखकर इंसान और जानवर के बीच का फर्क खत्म हो जाना स्वाभाविक था। हाड़ कंपाने वाली सर्दी के इस मौसम में लगा जैसे दोनों को एक–दूसरे की जरूरत है।

कंपकंपाती सर्दी में ऐसे दृश्य देश के सभी हिस्सों में देखे जा सकती हैं। इंसान होकर इंसान की इस बेबसी को देखने के आदी हो चुके हम लोगों को अब ऐसा लगने लगा है कि फुटपाथ पर सोने वाले लोगों की यही नियति है, जिसे बदला नहीं जा सकता है।

दिल्ली में हर वर्ष भूख, बेबसी और बीमारी से करीब चार हजार लोग बेमौत मर जाते हैं, जिनके सिर पर कोई छत नहीं होती। पिछले साल दिल्ली उच्च न्यायालय ने शीला दीक्षित सरकार को निर्देश दिया था कि दिल्ली में फुटपाथ पर सोने वाले बेघरों के लिए रैन बसेरों के इंतजाम की ठोस योजना न्यायालय में प्रस्तुत की जाए। अदालत ने यह भी जानना चाहा कि राज्य सरकार ऐसा क्यों कहती है कि रैन बसेरों में लोग नहीं आ रहे हैं, जबकि प्रायः लोग सड़कों और फुटपाथों पर रात में सोते हुए देखे जा सकते हैं। असल में भूमिहीनों और बेघरों की यह समस्या एक दिन की नहीं, बल्कि सनातन है।

दिल्ली तो सिर्फ इसका एक उदाहरण मात्र है, जहां कहने को आम जनता के लिए नीतियां बनाई जाती हैं। बेघरों को जब भी आश्रय देने की बात होती है तो सरकार जमीन की कमी का रोना रोती है। दूसरी तरफ बड़े–बड़े शॉपिंग मॉल, सिनेमाघर और फाइव स्टार होटल बनाने वालों को वही सरकार खुले हाथों जमीन मुहैया कराती है। अगर उसकी राह में झुग्गी–झोपड़ियां बाधा बनती हैं तो उन्हें उजाड़ने में जरा भी देर नहीं की जाती।

एक अनुमान के मुताबिक दिल्ली की करीब 35 लाख आबादी नरक के समान झुग्गी–झोपड़ियों में जीने को विवश है। वहीं करीब 60 हजार लोगों को एक अदद झुग्गी भी मयस्सर नहीं है। यही वजह है कि लोग सर्दी, गर्मी और बरसात झेलते हुए खुले आसमान तले जीने को मजबूर हैं।

1985 से दिल्ली सरकार के बजट में हर साल 60 लाख रुपये का प्रावधान रैन बसेरों के लिए किया जा रहा है, लेकिन इस धनराशि का अधिकांश पैसा कर्मचारियों के वेतन, प्रशासन और दूसरे मद में खर्च हो जाता है। दिल्ली में बेघर–बेसहारा लोगों की इस समस्या के लिए कोई एक सरकार या एक दल जिम्मेदार नहीं है।

सभी दलों के लिए दिल्ली में रहने वाले लाखों बेघर सिर्फ एक चुनावी मुद्दा हैं। उनकी समस्याओं के समाधान के प्रति कोई भी दल जरा भी गंभीर नहीं है। दिल्ली में शायद ही ऐसा कोई कोना मिले, जहां रात में खुले आसमान के नीचे बेघरों को सोते हुए नहीं देखा जाता। चांदनी चौक, पहाड़गंज, कश्मीरी गेट, पंजाबी बाग और आईटीओ समेत कई स्थानों पर वे अपनी रात ऐसे ही खुले में गुजारते हैं।

फुटपाथ पर सोने वालों में ज्यादातर रिक्शा, ठेला चलाने वाले और मजदूरी व भिक्षाटन करने वाले लोग होते हैं, जो अपना सर छिपाने के लिए उन जगहों की तलाश करते हैं, जहां सुबह उन्हें मजदूरी मिल जाए। इस लिहाज से पुरानी दिल्ली का इलाका उन्हें खूब भाता है। एक तो सर्दी की मार, ऊपर से पुलिस की दबिश प्रायः उनकी नींद में खलल डालती है। दिल्ली में हर चीज की कीमत तय है। यही वजह है कि पुलिस फुटपाथ पर सोने वाले लोगों से पैसे वसूलती है। बेघरों के लिए यह स्वीकार करना एक मजबूरी है, वरना उनके सिर से आसमान का साया भी उठ जाएगा।

बेघर और बेसहारा लोगों को एक अदद छत मुहैया कराने के लिए देश की अदालतें सरकारों को अक्सर फटकार

**सभी दलों के लिए दिल्ली में रहने वाले लाखों बेघर सिर्फ एक चुनावी मुद्दा हैं। उनकी समस्याओं के समाधान के प्रति कोई भी दल जरा भी गंभीर नहीं है। दिल्ली में शायद ही ऐसा कोई कोना मिले, जहां रात में खुले आसमान के नीचे बेघरों को सोते हुए नहीं देखा जाता। चांदनी चौक, पहाड़गंज, कश्मीरी गेट, पंजाबी बाग और आईटीओ समेत कई स्थानों पर वे अपनी रात ऐसे ही खुले में गुजारते हैं। फुटपाथ पर सोने वालों में ज्यादातर रिक्शा, ठेला चलाने वाले और मजदूरी व भिक्षाटन करने वाले लोग होते हैं, जो अपना सर छिपाने के लिए उन जगहों की तलाश करते हैं, जहां सुबह उन्हें मजदूरी मिल जाए।**

**बेघर और बेसहारा लोगों को एक अदद छत मुहैया कराने के लिए देश की अदालतें सरकारों को अक्सर फटकार लगाती रहती हैं, लेकिन किसी पर कोई असर नहीं पड़ता। ऐसा नहीं है कि बेघरों के पुनर्वास के लिए देश में कोई कानून नहीं है। योजनाएं और नियम सब हैं, लेकिन कमी है तो सरकारों में इच्छाशक्ति की। यही वजह है कि दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में एक बड़ी आबादी खुले आसमान के नीचे गुजर–बसर कर रही है।**

लगाती रहती हैं, लेकिन किसी पर कोई असर नहीं पड़ता। ऐसा नहीं है कि बेघरों के पुनर्वास के लिए देश में कोई कानून नहीं है। योजनाएं और नियम सब हैं, लेकिन कमी है तो सरकारों में इच्छाशक्ति की। यही वजह है कि दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में एक बड़ी आबादी खुले आसमान के नीचे गुजर–बसर कर रही है।

आजकल भारत के लिए एक विशेषण का जमकर इस्तेमाल किया जा रहा है, तेजी से उभरती हुई महाशक्ति, लेकिन सही अर्थों में विकास का यह रथ देश के उन लाखों बेसहारा और बेघरों तक नहीं पहुंचता, जो जमीन को बिस्तर और आसमान को खुली चादर समझकर सो जाते हैं और सुबह होने का इंतजार करते हैं। ऐसे में सवाल यह उठता है कि सरकार आखिर कब इन विसंगतियों को दूर करेगी? देश के समक्ष आज ऐसे कई यक्ष प्रश्न हैं, जो उचित जवाब की राह देख रहे हैं। इन सबके बीच हमारे हाकिम और हुक्काम गरीबी, भुखमरी एवं बेरोजगारी की समस्या को हर हाल में जिंदा रखना चाहते हैं, ताकि उनका राजनीतिक मकसद भी पूरा हो और उनके नाम पर बनने वाली विविध योजनाओं से आर्थिक लाभ भी मिलता रहे।

भारत शायद दुनिया के उन चंद बदकिस्मत देशों में से एक है, जहां राष्ट्रमंडल खेलों के दौरान बेघरों को खदेड़कर अरबों रुपये पानी की तरह बहा दिए जाते हैं। काश! उन पैसों का कुछ हिस्सा भी ईमानदारी के साथ उन पर खर्च कर दिया जाता तो उन्हें सर्दी, गर्मी और बरसात झेलने न पड़ते। अक्सर निराशाओं में ही उम्मीदें छिपी होती हैं। निश्चित रूप से देश में फुटपाथों पर रात गुजारने वालों की संख्या देखकर मन विषाद से भर जाता है। ऐसे हालात में जनता न्यायालय से उम्मीद करती है कि वही कुछ करे, क्योंकि सरकार तो इस मामले में पूरी तरह संवेदनहीन हो चुकी है। ❑

# ठण्ड से ठिठुरते बेघर लोग

**:: उमाशंकर मिश्र ::**

दिल्ली हो, लखनऊ, कानपुर, पटना या फिर भोपाल, भारत के विभिन्न शहरों में हजारों बेघर लोग रहते हैं, जो एक दूसरे के पीछे खुद को छिपाकर, टाट अथवा प्लास्टिक की चादर ओढ़कर कंपकपाते हुए रात बिता देते हैं। इनमें ऐसे लोगों की संख्या काफी अधिक है जो रोजगार की तलाश में शहरों की तरफ आते हैं।

ज्यादातर संख्या ऐसे कामकाजी पुरुषों की होती है, जिनकी आमदनी पर गांव में उनका पूरा परिवार आश्रित रहता है। खुद भूखे रहकर वे एक–एक पाई जोड़ते हैं। इनके पास न राशन कार्ड, न पहचान पत्र और न ही नागरिकता का कोई प्रमाण। ऐसे में कोई सामाजिक सुरक्षा या फिर सरकारी योजना का लाभ भी नहीं मिल पाता। कूड़ा बीनना, मजदूरी, ठेले पर सामान बेचना, भीख मांगना या फिर खून बेचकर गुजारा करना इन लोगों का शगल बन जाता है।

'सेंटर फॉर इक्विटी स्टडीज' के अध्ययन के मुताबिक अकेलापन और समाज से कटाव बेघर लोगों को तोड़कर रख देता है। 'इंडो ग्लोबल सोशल सर्विस सोसायटी' से जुड़े हाउसिंग राइट्स एक्टिविस्ट बिपिन राय के मुताबिक 'अनियमित पोषण से सर्दियों में बेघर लोगों के हालात ज्यादा बिगड़ जाते हैं। जिंदा रहने के लिए जाड़े में इन लोगों को ज्यादा कैलोरी की जरूरत होती है, लेकिन कई बार इन्हें तीन दिन में एक ही बार खाना मिल पाता है। बेरोजगार लोगों को तो वह भी नसीब नहीं होता। यही कारण है कि बेघर लोग मौत का आसान शिकार बन जाते हैं।'

जानकारों की मानें तो आवासहीनता की सर्वमान्य परिभाषा न होने के कारण ज्यादातर देशों की नीतियों में बेघर लोगों को जगह नहीं मिल पाती। हमारे यहां तो बेघर लोगों की जनगणना भी अजब तरीके से होती है। इसकी एक मिसाल 2011 की जनगणना में मुंबई में देखने को मिलती है। मुंबई में करीब 1.75 लाख बेघर हैं। लेकिन जनगणना के आंकड़ों में वहां सिर्फ 30 हजार बेघर दर्ज हैं। अधिकारी भी मानते हैं कि बेघर लोगों की संख्या ज्यादा हो सकती है, लेकिन उनका कहना है कि गणना के समय महज 30 हजार लोग अपने ठिकानों पर मौजूद थे। जबकि 2001 की जनगणना के मुताबिक मुंबई में बेघर लोगों की संख्या 40 हजार थी। तब से लाखों लोग मुंबई आए होंगे। जाहिर है कि सरकार आंकड़ों को दुरुस्त करने के लिए बेघरों की संख्या कम दिखाना चाहती है क्योंकि लोगों की आश्रयहीनता किसी भी समाज और सरकार के लिए कलंक से कम नहीं है। ❑

# महानगर में बढ़ता प्रदूषण

**महानगरों में विकास का मतलब केवल अंधाधुंध निर्माण या फैलाव नहीं होता, उसका एक निश्चित लक्ष्य और निश्चित पथ होना आवश्यक है। उसके अभाव में किसी भी शुभ परिणाम की पूर्व कल्पना नहीं की जा सकती है। इससे तो हम ऐसे चक्रव्यूह में फंसते चले जाएंगे, जिससे निकलने का रास्ता बहुत मुश्किल होगा और हम प्रतीकात्मक उपाय ही करते रह जाएंगे जैसे दिल्ली में शादी–समारोहों में जेनरेटरों पर पाबंदी लगाने की घोषणा।**

■ **जवाहरलाल कौल**

जिस बात को आम आदमी अपनी इंद्रियों से ही महसूस करता है, उसे साबित करने के लिए विशेषज्ञों को बरसों लग सकते हैं। कौन नहीं जानता कि दिल्ली कितनी प्रदूषित है? उसकी हवा में कितनी जहर घुली हुई है? उसको हम रोज भोग जो रहे हैं लेकिन फिर भी बौद्धिक स्तर पर हम मनन नहीं करते और इसीलिए विचलित भी नहीं होते।

प्रदूषण अपना काम करता है और अपने भविष्य से अनभिज्ञ हम अपने कामों में मस्त रहते हैं। इस तरह हम संकट को भूलने–टालने की कोशिश करते रहे हैं लेकिन वह न तो हमें भूलेगा और न इसका बहाना करने से वह टलेगा। शायद यहीं पर विशेषज्ञों और वैज्ञानिकों की चेतावनी हमें चौका देती है और हम कुछ देर के लिए सोचने लगते हैं, उस आसन्न खतरे के बारे में जो हमारे सामने मुंह बाए खड़ा है। वे खतरे क्या हैं और किस रूप में हैं? यह जानने के लिए सबसे पहले दुनिया के दो बड़े विकासशील नगरों वायुमण्डल की एक दिन की तस्वीर को देखा जाए।

अमेरिकी मौसम विज्ञान विभाग और भारतीय मौसम विज्ञान संस्था ने सूचना दी कि एक सोमवार को दिल्ली के मौसम विभाग केंद्र के पास हमारे वायु में 'एओआई' (हवा में प्रदूषण का एक माप) 320 था और दिल्ली के ही एक और स्थान पर यह माप 380 था। इसी दिन पेइचिंग में यह माप 200 ही था और न्यूयार्क में इससे भी कम। वैज्ञानिक स्तर पर 201 से अधिक माप बहुत रोगकारक स्थिति बताई जाती है और 301 से अधिक एओआई को 'खतरनाक' घोषित किया जाता है, जिसमें आम जनता के लिए स्वास्थ्य की चेतावनियां जारी की जानी चाहिए।

हमारे नगर–महानगरों में आने वाले विदेशियों को अपने देशों में पहले ही चेताया जाता है कि वे पानी सोच–समझ कर पिएं। अस्पतालों के आंकड़े बताते हैं कि दिल्ली में दमा और सांस के दूसरे

**अब धुआं कहीं और से नहीं हमारे ही नगर में पैदा होता है। रोजाना दौड़ने वाले लाखों वाहनों और कारखानों से पैदा होने वाले इस धुएं की मात्रा हर वर्ष लगातर बढ़ती ही जा रही है। कुछ धुआं पड़ोसी राज्यों में खेतों में लकड़ी या घास– फूस जलाने से बनता है। पड़ोसियों के इसी धुएं पर दिल्ली में शोर तो मचा पर किसी ने उससे भी विषैले वाहनों के धुएं पर खास कुछ नहीं कहा गया क्योंकि वह हमारी महानगरीय जीवन शैली से जुड़ा हुआ है।**

**पानी हवा या खाना, कोई वस्तु जिसका मानव जीवन से गहरा रिश्ता है नहीं जिसके बारे में हम दावा कर सकें कि वह एकदम स्वच्छ है यानी कि प्रदूषित नहीं है। घोषित आंकड़ों के अनुसार दिल्ली में भी लगभग 20 फीसद औषधियां भी प्रदूषित या नकली हैं। सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरन्मेंट की निदेशक अनुमिता राय चौधरी अपनी राय देती हैं 'हमें बहुत आक्रामक और सख्त कदम उठाने होंगे ताकि आम आदमी के स्वास्थ्य को बचाया जा सके।' लेकिन कौन उठाएगा वे कदम और भला कैसे?**

रोगियों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। ये रोग बच्चों और बूढ़ों में ही नहीं, जवानों को भी जकड़ रहे हैं। किसी से भी पूछें तो तपाक से जवाब देगा कि दिल्ली में यह हवा के प्रदूषण के कारण हो रहा है लेकिन है क्या यह प्रदूषण और आ कहां से आ रहा है? फिर सरकार कुछ कर क्यों नहीं रही है?

इस सिलसिले में एक विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक संस्था की नई घोषणा पर गंभीरता से ध्यान दें। ग्लोबल बर्डन ऑफ डिजीज काउंट यानी वैश्विक रोग वहन माप के अनुसार दिल्ली में हवा में जहरीले पदार्थों की मात्रा में पिछले दस सालों में 57 फीसद की वृद्धि हुई है। राजधानी में छोटे–बड़े धूल कणों की मात्रा में कई गुना वृद्धि हुई। वहीं कार्बन मोनोओक्साइड, ओजोन, बेनजीन आदि के बढ़े हुए स्तर मनुष्यों में गंभीर रोग पैदा कर रहे हैं।

बीते माह दिल्ली में गहरी धुंध के कारण अंधेरा–सा छा गया था और थोड़े समय के लिए सरकार भी हरकत में आ गई थी। यह सामान्य धुंध नहीं थी, इसे 'स्मोग' कहते हैं यानी पानी के छोटे–छोटे कण धूल और धुएं और दूसरी गैसों के कणों पर सवार होकर तैरते हैं। अब धुआं कहीं और से नहीं हमारे ही नगर में पैदा होता है। रोजाना दौड़ने वाले लाखों वाहनों और कारखानों से पैदा होने वाले इस धुएं की मात्रा हर वर्ष लगातर बढ़ती ही जा रही है। कुछ धुआं पड़ोसी राज्यों में खेतों में लकड़ी या घास– फूस जलाने से बनता है। पड़ोसियों के इसी धुएं पर दिल्ली में शोर तो मचा पर किसी ने उससे भी विषैले वाहनों के धुएं पर खास कुछ नहीं कहा गया क्योंकि वह हमारी महानगरीय जीवन शैली से जुड़ा हुआ है। बात धुएं की होती तो शायद उसे किसी तरह नियंत्रित किया जा सकता था।

पानी हवा या खाना, कोई वस्तु जिसका मानव जीवन से गहरा रिश्ता है नहीं जिसके बारे में हम दावा कर सकें कि वह एकदम स्वच्छ है यानी कि प्रदूषित नहीं है। घोषित आंकड़ों के अनुसार दिल्ली में भी लगभग 20 फीसद औषधियां भी प्रदूषित या नकली हैं। सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरन्मेंट की निदेशक अनुमिता राय चौधरी अपनी राय देती हैं 'हमें बहुत आक्रामक और सख्त कदम उठाने होंगे ताकि आम आदमी के स्वास्थ्य को बचाया जा सके।' लेकिन कौन उठाएगा वे कदम और भला कैसे?

हवा को साफ रखना है तो वाहनों की बढ़ती बेलगाम संख्या पर नियंत्रण लगाना होगा। दिल्ली में जितनी गाड़ियां हैं, उतनी अपने ही देश के किसी भी नगर में नहीं हैं और उन गाड़ियों में हर दिन वृद्धि हो रही है। इसे रोकने का हमने कोई आधार या आचारसंहिता तय नहीं की है। गाड़ियों को यूरो दो या तीन के पैमाने पर चलाने पर मजबूर भी करें और उनके धुएं की मात्रा कम भी करें तो भी उससे वाहनों से पैदा होने वाले धुएं में कुछ फीसद की कमी आएगी। संख्या कम करने से ही बड़ा अंतर पड़ सकता है। लेकिन जो सरकार, वाहन उद्योग को बढ़ावा देने पर कृत संकल्प है, वह भला ऐसा कैसे कर सकती है? दिल्ली में करेगी तो और महानगरों में भी मांग होगी। वाहन उद्योग को अगर फलना– फूलना है तो लोगों में गाड़ी खरीदने की क्षमता भी पैदा करनी होगी और उसकी आदत भी डालनी होगी। इसका मतलब यह हुआ कि गाड़ियां कम नहीं की जा सकती हैं। महानगर ही कुछ ऐसे बना है कि गाड़ियां चाहिए ही।

**ग्लोबल बर्डन ऑफ डिजीज काउंट यानी वैश्विक रोग वहन माप के अनुसार दिल्ली में हवा में जहरीले पदार्थों की मात्रा में पिछले दस सालों में 57 फीसद की वृद्धि हुई है। राजधानी में छोटे–बड़े धूल कणों की मात्रा में कई गुना वृद्धि हुई।**

महानगरों के विकास के पीछे यह भी एक बड़ा कारण है कि छोटे नगरों में दूसरे यातायात साधन भी काम कर सकते हैं। बड़े महानगर में गाड़ी ही चाहिए। महानगरों और गाड़ियों का चोली–दामन का रिश्ता हैं। पानी को लें तो पता चलेगा कि दिल्ली में पानी का प्राकृतिक स्रोत है ही नहीं। यमुना तो कब के गंदे नाले में बदल चुकी है। हजारों उद्योगों का रसायनिक कचरा उसमें ही गिरता है। फिर उसमें पानी का वह स्तर भी नहीं है

तो शुद्ध क्या किया जाए? दिल्ली के थोड़े-से भाग में गंगा का पानी आ रहा है लेकिन कब तक आएगा, इसका कोई आश्वासन नहीं दिया जा सकता।

गंगा का अपना अस्तित्व खतरे में हैं और उत्तर प्रदेश, जहां से यह दिल्ली में आती है, कभी भी पानी देने से इनकार कर सकता है। आखिर में केवल भू-जल रह जाता है। दो तिहाई दिल्ली में भू-जल खारा ही नहीं है, उसमें कई प्रकार के खनिज भी मौजूद हैं। दक्षिण और उत्तर दिल्ली के कुछ इलाकों में पानी सौ फीट से नीचे मिलता है और अरावली क्षेत्र में दो सौ फुट से भी अधिक नीचे चला गया है भू-जल का स्तर। बढ़ती आबादी की जरूरतों की जितनी मांग है, उसे देखते हुए जल स्तर को और नीचे ही जाना है। जिनके पास 'आरओ' जैसी आधुनिक मशीनें हैं, उनको खारे पानी को मीठा बनाने की कुछ सुविधा है लेकिन इन इलाकों में आधी से अधिक आबादी को ये सुविधाएं उपलब्ध ही नहीं हैं। जो पानी जल बोर्ड की ओर से नागरिकों को उपलब्ध कराया जाता है, वह भी प्रदूषण से मुक्त नहीं।

गुजरते हुए हमारी नजर जलवाहक पाइपों पर जमी काइयों और उसके बीच से फूटती जलधार पर पड़ती है और हमारा दिल दहले बिना रहता। ये कब से ऐसे ही पड़े रहते हैं जबकि बहते जल की बरबादी रोकना एक अलग विषय है। मान लीजिए कि अगर सरकार यह सुनिश्चित भी कर ले कि उसे लोगों को हर हाल में शुद्ध पेयजल उपलब्ध कराना है तो सवाल उठेगा कि आखिर वह पानी लाएगी कहां से? अगर कोई पूछे कि जब किसी महानगर को बसाया जाता है तो क्या आयोजकों के दिमाग में पानी की उपलब्धता की कोई कल्पना ही नहीं होती तो इस प्रश्न का उत्तर सरकार नहीं दे पाएगी क्योंकि सचमुच ही महानगरों के अंधाधुंध विकास में ये सारी बातें पिछवाड़े में डाल दी जाती हैं। चूंकि दिल्ली देश की राजधानी है, इसलिए एक पैमाने के रूप में इसकी मिसाल दी जाती है वरना यही हाल कमोबेश अन्य महानगरों का होता जा रहा है। दिल्ली देश के विकास का मॉडल है जो किसी भी प्रकार के दर्शन के अभाव का आईना दिखाती है। महानगरों में विकास का मतलब केवल अंधाधुंध निर्माण या फैलाव नहीं होता, उसका एक निश्चित लक्ष्य और निश्चित पथ होना आवश्यक है। उसके अभाव में किसी भी शुभ परिणाम की पूर्व कल्पना नहीं की जा सकती है। इससे तो हम ऐसे चक्रव्यूह में फंसते चले जाएंगे, जिससे निकलने का रास्ता बहुत मुश्किल होगा और हम प्रतीकात्मक उपाय ही करते रह जाएंगे जैसे दिल्ली में शादी-समारोहों में जेनरेटरों पर पाबंदी लगाने की घोषणा। ❑

**होलसेल एवं रिटेल विक्रेता**

रत्न एवं उपरत्न, सम्पूर्ण पूजन सामग्री, रुद्राक्ष एवं मालाएँ, स्फटिक, श्री यंत्र, दक्षिणावर्ती शंख, मूर्तियां, यंत्र, धार्मिक पुस्तकें

**शाकुम्भरी रत्न केन्द्र**

अनुपम होटल बिल्डिंग, दुर्गा मन्दिर वाली गली
सदर बाजार, मुजफ्फरनगर
9897059615, 9760013815

**तपेश** **राजेश**

नोट : कम्प्यूटर द्वारा शुद्ध जन्मपत्रिका निकालने की सुविधा

**मुद्दा**

# कैसे बनेगा भावी भारत?

**हमारे समकालीन आजाद हुए देशों के मुकाबले हमारी उपलब्धियां बहुत कम है। खासकर देश के आर्थिक विकास में तकनीक और विज्ञान का वह योगदान नही है जो होना चाहिए था। जापान, चीन, दक्षिण कोरिया आदि देश जिस प्रकार कार्य योजनाएं बनाकर निर्माण का कार्य करते है, उसी प्रकार भी विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में स्पष्ट लक्ष्य निर्धारित कर सफलता प्राप्त कर सकता है। लगभग सवा अरब लोगों का हमारा राष्ट्र की प्रगति उसकी जनता के चिंतन पर निर्भर होती है जो अपने राजनेताओं को सही दिशा में चलने के लिए बाध्य कर सकती है। देश धीरे–धीरे जाग रहा है। देश की जनशक्ति को ही देश की ताकत बनना होगा।**

**■ निरंकार सिंह**

कलकत्ता के भारतीय विज्ञान कांग्रेस के सौवें अधिवेशन में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने नई विज्ञान और तकनीक नीति–2013 की घोषणा के साथ ही देश की सामाजिक समस्याओं के समाधान की अपील भी वैज्ञानिकों से की है। उन्होंने वैज्ञानिकों से कृषि, आवास, ऊर्जा, पर्यावरण और सस्ती स्वास्थ्य सेवा, पानी, सुरक्षा आदि के क्षेत्रों से जुड़ी समस्याओं का समाधान खोजने को कहा है। सबसे बड़ी बात यह है कि कोई भी नीति बना देना तो आसान है पर उस पर अमल करना कठिन होता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो प्रधानमंत्री के पास कोई कार्य योजना नहीं है।

आजादी के बाद नेहरू और भाभा ने कहा था कि देश की गरीबी, भुखमरी और बेरोजगारी को हम विज्ञान और तकनीकी की मदद से मिटा सकते हैं। अपनी इस कल्पना को साकार करने के लिए उन्होंनें कई ठोस कदम उठाये। वैज्ञानिक और तकनीकी अनुसंधान के लिए हमारे पास आज एक मजबूत आधारभूत ढांचा है। लेकिन दुनिया को बताने लायक हमारे पास शायद ही कोई उपलब्धि हो? सुई से लेकर पेन तक और बूट पालिश से लेकर रंगरोगन पेंट तक के सारे आविष्कार और उत्पाद विदेशियों की ही देन है।

शायद अपने देश में हमारी सरकार और राजनेता वह माहौल तैयार नहीं कर सके जिसमें हमारे देश के युवाओं में नये नये आविष्कार करने की सामर्थ्य पैदा हो सके? देश के आर्थिक विकास से तकनीक और विज्ञान का बहुत गहरा सम्बन्ध है

लेकिन तकनीकी विकास के लिए हम अभी तक कोई ठोस नीति या योजना भी तैयार नहीं कर सके हैं जिसमें देश की बुनियादी समस्याओं का समाधान हो सके।

वास्तव में देश के आर्थिक विकास में विज्ञान और तकनीक की ताकत और योगदान को अभी तक न तो हमारे अग्रणी राजनेता समझ पाये हैं और न ही उद्योगपति एवं आम जनता जान सकी है। इसकी अहमियत उनकी सोच के बाहर लगती है। इसलिए इसे समझाने के लिए हमें कुछ दूसरे विकसित देशों पर नजर डालनी पड़ेगी कि वे कैसे विकसित देश

**आजादी के बाद नेहरू और भाभा ने कहा था कि देश की गरीबी, भुखमरी और बेरोजगारी को हम विज्ञान और तकनीकी की मदद से मिटा सकते हैं। अपनी इस कल्पना को साकार करने के लिए उन्होंनें कई ठोस कदम उठाये। वैज्ञानिक और तकनीकी अनुसंधान के लिए हमारे पास आज एक मजबूत आधारभूत ढांचा है। लेकिन दुनिया को बताने लायक हमारे पास शायद ही कोई उपलब्धि हो?**

बने। इस सन्दर्भ में पहला उदाहरण जापान का है। एक ऐसा देश जो परमाणु बमों के हमले से पूरी तरह नष्ट भ्रष्ट कर दिया गया था और जिसे दूसरे विश्वयुद्ध के बाद अपमानजनक परिस्थितियों में जीने के लिए विवश होना पड़ा था, आज विश्व के सात शक्तिशाली देशों में एक है।

**जापान ने विज्ञान को राजनीतिक आवश्यकताओं के अनुसार ढालने में असाधारण सूझ–बूझ दिखायी। जापान की ही तरह सोवियत संघ और अब रूस ने भी विज्ञान शासन और उद्योग की एकात्मता को आधार बनाया। उसने भी वैज्ञानिक शिक्षा के लिए जापान की तरह अपनी मातृ भाषा को आधार बनाया। योजनाबद्ध विकास के सिद्धांत को रूस ने लागू किया। नौकरशाही और लाल फीताशाही को खत्म करने के लिए नये–नये तौर तरीके अपनाये।**

अपनी इस हैसियत को जापान ने लगभग बीस वर्ष की कड़ी मेहनत के बाद हासिल किया। उसके पास प्राकृतिक संसाधनों के नाम पर अधिकांश क्षेत्रों संभवत कुछ भी नही है। लेकिन उसकी सरकार, उद्योगों, प्रयोगशालाओं, वित्तीय संस्थाओं, प्रयोगकर्ताओं और उपभोक्ताओं के विशाल दलों ने अपने लक्ष्य को हासिल करने के लिए दिन रात प्रयासरत रहे। अपने सपने को असलियत में बदलने के लिए राजनीतिज्ञों, प्रशासकों, राजदूतों, व्यापारियों, वैज्ञानिकों, इंजीनियरों, तकनीशियनों, बैंकरों और आम लोगों ने जो अलग अलग व्यवसायो से जुड़े थे, भरपूर सहयोग दिया।

पिछली शताब्दी के छठे दशक तक जापान विज्ञान एवं तकनीक के क्षेत्र में बहुत पिछड़ा था। उन दिनों वह विदेशों पर निर्भर था। तभी उसने फैसला किया कि वह स्वयं तकनीक विकसित करेगा। यह फैसला जापान की खुद की तकनीक (टेकनालॉजी) के विकास के लिए और जापानी उद्योगों की मूल आन्तरिक सामर्थ्य को विकसित करने के उद्देश्य से किया गया था।

इसके अगले दो दशकों के दौरान जापान विश्व की एक आर्थिक शक्ति बन गया। जापान ने यह समृद्धि अपनी तकनीक के निर्यात व्यापार से अर्जित विशाल धनराशि से प्राप्त की। बाढ़, भूकम्प जैसी तमाम प्राकृतिक आपदाओं के बाद भी जापान आज विश्व की एक ताकत बन गया है।

इसी तरह दक्षिण कोरिया 1950 एक गरीब देश माना जाता था। दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान उस पर जापान एक अधिकार था। तभी उसका विभाजन हुआ। इन सब आपदाओं के बावजूद कुछ ही वर्षों में दक्षिण कोरिया ने इतनी उन्नति की कि वह उसकी गिनती दुनिया के अग्रणी देशों में होती है। यह चमत्कार उसने अपने अनेक क्षेत्रों में आधुनिक तकनीक के जरिए हासिल किया। स्टील, पोत, कार और इलेक्ट्रानिक उत्पाद का निर्माण और उसका निर्यात करके वह सम्पन्न हुआ।

एक छोटा सा देश है इजराइल जिसका जन्म 1948 में हुआ था। रेगिस्तान में पानी और भोजन की अपनी तत्कालिक जरूरतों के पूरा करने के बाद वह रूका नही। उसके चारों ओर उसके शत्रु देश है। इसलिए उसने अपनी सुरक्षा का भी पुख्ता इंतजाम किया और वह हर समय चौकस रहता हैं। इजरायली वैज्ञानिक ने न केवल अपने देश का विकास किया बल्कि अमेरिका में वे उच्च पदों पर है। अपने देश के हित में वे अमेरिकी नीति को प्रभावित करते है।

लगभग आठ लाख की आबादी वाला एक छोटा सा देश फिनलैंड भी अपनी तकनीकी सामर्थ्य को किसी से कम नही आंकता है। यह देश कागज और दूरसंचार के क्षेत्र में अग्रणी माना जाता है। मोबाइल फोन की निर्माता 'नोकिया' फिनलैण्ड की कम्पनी है। नोकिया का सालाना बजट भारत सरकार के कुल बजट के तीन चौथाई से भी ज्यादा है। इससे आप तकनीकी विकास की ताकत का अंदाजा लगा सकते है।

जापान ने विज्ञान को राजनीतिक आवश्यकताओं के अनुसार ढालने में असाधारण सूझ–बूझ दिखायी। जापान की ही तरह सोवियत संघ और अब रूस ने भी विज्ञान शासन और उद्योग की एकात्मता को आधार बनाया। उसने भी वैज्ञानिक शिक्षा के लिए जापान की तरह अपनी मातृ भाषा को आधार बनाया। योजनाबद्ध विकास के सिद्धांत को रूस ने लागू किया। नौकरशाही और लाल फीताशाही को खत्म करने के लिए नये–नये तौर तरीके अपनाये। पुराने दकियानूसी समाज के स्थान पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले नये समाज की स्थापना पर जोर दिया गया। शिक्षा उत्पादन की जरूरतों के हिसाब से दी जाने लगी। कालेजों में पढ़ाई, डिजाइन तथा निर्माण तीनों तरह के काम होने लगे। सामाजिक अनुशासन, कड़ी मेहनत तथा समस्याओं

से जूझने की विश्लेषणात्मक विधि पर जोर दिया जाने लगा। जो लोग इन गुणों को अपना लेते थे उनका सम्मान किया जाता था। इस तरह धीरे–धीरे नये मूल्य बन गये।

जापान और रूस के अनुभवों का चीन को बड़ा फायदा हुआ। चीनी इस बात में भी विश्वास करते हैं कि नयी आधुनिक तकनीकों को जितनी जल्दी हो सके अपना लेना चाहिए। लेकिन इसके साथ ही जब तक नयी तकनीक न अपना ली जाये तब तक पुरानी तकनीक को प्रोत्साहन देते रहना चाहिए ताकि अधिक से अधिक लोग काम कर सकें। आकार और आबादी के साथ–साथ ऐतिहासिक दृष्टि से भी चीन और भारत के बीच कई चीजें एक जैसी रहीं हैं लेकिन पचास साल पहले तक हमारे इस पड़ोसी देश में ऐसा कुछ नहीं था जिसे देखकर हमारे देश के लोंगों को ईर्ष्या हो।

इन पांच दशकों में चीन ने अपने सामानों के उत्पादन की लागत गुणवत्ता में इतना सुधार किया कि अमेरिका और जापान जैसी महाशक्तियां भी पशोपेश में पड़ गयी। अमेरिका डिपार्टमेंटल स्टोर यदि आज चीनी सामान से पटे पड़े हैं तो जापानी उद्योगपतियों में भी सस्ते चीनी श्रम के दोहन की होड़ लगी है। कम कीमत पर बेहतर सामान का एक अनूठा अर्थशास्त्र चीनी उद्योगपतियों को अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धा में निर्णायक बढ़त दिला चुका है।

इन बातों के विस्तार से यहाँ इस लिए बताया गया है कि विज्ञान और तकनीक ही वह ताकत है जिससे कोई भी देश अपना विकास कर सकता हैं लेकिन आजादी के 65 वर्षों के बाद भी हम किसी भी क्षेत्र में किसी मौलिक तकनीक का विकास नही कर पाये तो हमें इसके मूल कारणों का विश्लेषण करना चाहिए और उसके अनुसार अपनी नीतियों और उसके अमल में सुधार करना चाहिए।

दरअसल हमारे यहाँ कहीं भी कोई देखने वाला नही है कि कहाँ क्या हो रहा है? हमारे तमाम विश्वविद्यालय, इंजीनियरिंग और तकनीकी संस्थान, राष्ट्रीय प्रयोगशालाएं राजनीति का अखाड़ा बन गयी है। जिस पर जनता का अरबों रूपया खर्च होता है लेकिन वहां किसी नई तकनीक का आविष्कार या विज्ञान की कोई मौलिक खोज नही होती है।

इन विश्वविद्यालयों, प्रयोगशालाओं और संस्थानों पर सोर्स–सिफारिशों से घटिया किस्म के वैज्ञानिकों और शिक्षकों ने अपना कब्जा कर लिया। इनमें इतना भाई–भतीजावाद और भ्रष्टाचार है कि मुश्किल से किसी प्रतिभावान वैज्ञानिक या शिक्षक को प्रवेश मिलता है। इसीलिए हमारे तमाम प्रतिभावान छात्र मौका मिलते ही विदेश चले जाते है।

दरअसल विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में हमारी नाकामयाबी राजनेताओं की नाकायमाबी है जो अपने संस्थानों और विश्वविद्यालयों को कोई दिशा नही दे सके। नेहरू, लाल बहादुर शास्त्री और मोरार जी देसाई के बाद देश का कोई ऐसा सक्षम प्रधानमंत्री नही मिला जो देश में विज्ञान और तकनीक के शोध और अनुसंधान के विकास का माहौल बनाने के लिए प्रेरित करता।

सन् 2003 में एनडीए की सरकार नई विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी नीति की घोषणा की थी लेकिन पिछले दस सालों में यूपीए की सरकार विज्ञान और प्रौद्योगिकी के भावी कार्यक्रमों की रूप रेखा तैयार करने और नई पहलों को दिशा देने में कोई भूमिका नही निभा सकी।

इस नीति में विज्ञान और प्रौद्योगिकी प्रशासन के प्रति रवैया, मौजूदा भौतिक और ज्ञान के संसाधनों के उचित इस्तेमाल, प्राकृतिक आपदाओं के प्रबंधन और उनसे उबरने के लिए नई तकनीकों और प्रणालियों के विकास, नई प्रौद्योगिकी के विकास, बौद्धिक सम्पदा के सृजन और प्रबन्धन की रूपरेखा बनायी गयी थी। इसके साथ साथ विज्ञान और प्रौद्योगिकी के लाभों और उपयोग के बारे में आम जनता के बीच जागृति पैदा करने की बात कही गयी थी।

लेकिन इस नीति के किसी भी लक्ष्य को हम हासिल नहीं कर सकें। ऐसा नही है कि हमारे सभी वैज्ञानिक संस्थान निकम्मे और नकारा है जिस किसी क्षेत्र में लक्ष्य निर्धारित किये गये और विज्ञानिकों को मौका मिला वहां उन्होने सफलतांए भी प्राप्त की है। भूमिगत परमाणु विस्फोट, मिसाइल और अन्तरिक्ष के क्षेत्र में हमारी कुछ उपलब्धियां भी है। लेकिन हमारे समकालीन आजाद हुए देशों के मुकाबले हमारी उपलब्धियां बहुत कम है। खासकर देश के आर्थिक विकास में तकनीक और विज्ञान का वह योगदान नही है जो होना चाहिए था।

जापान, चीन, दक्षिण कोरिया आदि देश जिस प्रकार कार्य योजनाएं बनाकर निर्माण का कार्य करते है, उसी प्रकार भी विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में स्पष्ट लक्ष्य निर्धारित कर सफलता प्राप्त कर सकता है। लगभग सवा अरब लोगों का हमारा राष्ट्र की प्रगति उसकी जनता के चिंतन पर निर्भर होती है जो अपने राजनेताओं को सही दिशा में चलने के लिए बाध्य कर सकती है। देश धीरे–धीरे जाग रहा है। देश की जनशक्ति को ही देश की ताकत बनना होगा। ❑

# स्वदेशी मेला जोधपुर

## (23-30 दिसम्बर, 2012)

स्वदेशी मेला आयोजन समिति के द्वारा आयोजित, मारवाड़ के सबसे बड़े व्यवसायिक केन्द्र एवं सबसे बड़े शहर जोधपुर में दिनांक 23 दिसम्बर 2012 को राजस्थान की पूर्व मुख्यमंत्री एवं प्रतिपक्ष माननीया श्रीमति वसुधंरा राजे जी ने उद्घाटन किया।

उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता स्वदेशी जागरण मंच के राष्ट्रीय संगठक श्री कश्मीरी लाल ने की। इस अवसर पर मेले के संयोजक पूर्व सांसद श्री जसवंत सिंह विश्नोई ने संबोधित किया। पोलो ग्राउण्ड रातानाडा, जोधपुर में आयोजित स्वदेशी मेले में लगभग 20 लाख दर्शकों की उपस्थिति के साथ उपभोक्ताओं का महाकुंभ सिद्ध हुआ।

स्वदेशी मेले में स्वदेशी उत्पादों तथा उपक्रमों की जानकारी सम्पूर्ण राजस्थान से आने वाले उपभोक्ताओं तक पहुंची। इन मेलों के माध्यम से ग्रामोद्योग, कुटीर उद्योग एवं बड़े भारतीय उद्योगों को अपने उत्पाद की बिक्री बढ़ाने अपने उत्पाद की पहचान पुख्ता करने, आवश्यक विपणन नीति तथा उत्पादक उपभोक्ता से आपसी विचार–विमर्श के माध्यम से स्वदेशी उद्योगों के लिए महत्वपूर्ण अवसर हुआ।

स्वदेशी मेले में उपभोक्ता–विक्रेता संवाद, व्यापार एवं उद्योगों की समस्याओं के समाधान पर संगोष्ठियां और उद्यमियों, विशेषज्ञों – प्रशासन की साझा कार्यशालाएं हुई। साथ ही स्वदेशी मेला जन आकर्षण का केन्द्र भी रहा।

इसके अलावा प्रतिदिन विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम, राष्ट्रस्तरीय कवि सम्मेलन, राज्यस्तरीय युवा महोत्सव, राष्ट्रीयस्तर की भजन संध्या, लोक संगीत संध्या कार्यक्रम भी प्रस्तुति किए गए।

समापन समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष नितिन गडकारी जी रहे।

विश्व व्यापार संगठन से राष्ट्र के समक्ष उत्पन्न चुनौतियों से निपटने की दृष्टि से स्वदेशी मेलों का आयोजन स्वदेशी उद्योगों का संवर्द्धन राष्ट्रीय महत्व का कार्य है। इन मेलों के आयोजन में भी गणमान्य व्यक्तियों एवं स्वदेशी उद्योगों ने अपनी सहभागिता प्रदान कर मेलों का गौरव बढाया है।

## जोधपुर में सम्पन्न 'स्वदेशी मेला' का विवरण

- **प्रथम स्वदेशी मेला (22–30 दिसम्बर, 2000)** में 550 स्टॉल के साथ 7 लाख लोगों का आगमन रहा, इसका उद्‌घाटन माननीय श्री यशवंत सिन्हा, तत्कालीन केन्द्रीय वित्तमंत्री, भारत सरकार के कर कमलों द्वारा हुआ। स्वदेशी मेला को अवलोकन करने के लिए तत्कालीन पूज्य सरसंघचालक जी माननीय के. सी. सुदर्शन भी पधारे साथ ही उद्योग एवं सामाजिक क्षेत्रो के प्रमुख लोगों ने भी स्वदेशी मेले में भाग लिया।
- **द्वितीय स्वदेशी मेला (13–21 जनवरी, 2002)** में 700 स्टॉल के साथ करीब 15 लाख लोगों ने भाग लिया, जिसका उद्‌घाटन माननीया श्रीमति वसुंधरा राजे, तत्कालीन लघु उद्योग राज्यमंत्री (स्वतंत्र प्रभार), भारत सरकार ने किया।
- **तृतीय स्वदेशी मेला (22–30 दिसम्बर, 2002)** में 900 स्टॉलों के साथ 15 से 20 लाख लोगों ने भाग लिया, जिसके उद्‌घाटन में तत्कालीन केन्द्रीय नागरिक उड्डयन मंत्री, भारत सरकार श्री शहनवाज हुसैन तथा समापन समारोह में मुख्य अतिथि माननीय श्री लालकृष्ण आडवाणी, तत्कालीन उप–प्रधानमंत्री, भारत सरकार उपस्थित थे।
- **चतुर्थ स्वदेशी मेला (1 से 9 अक्टूबर, 2003)** का उद्‌घाटन समारोह में माननीय सरकार्यवाह श्री मोहनराव जी भागवत के सानिध्य में केन्द्रीय कृषि मंत्री श्री राजनाथ सिंह ने किया तथा केन्द्रीय वित्तमंत्री जसवंत सिंह समापन समारोह में उपस्थित थे।
- **पंचम स्वदेशी मेला ( 30 अक्टूबर से 6 नवम्बर, 2004)** का उद्‌घाटन राजस्थान की मुख्यमंत्री माननीया श्रीमती वसुंधरा राजे द्वारा सम्पन्न हुआ।
- **छठा स्वदेशी मेला (31 अक्टूबर से 7 नवम्बर, 2007)** को सम्पन्न हुआ। जिसका उद्‌घाटन भारतीय जनता पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष राजनाथ सिंह जी के सानिध्य में राजस्थान की तत्कालीन मुख्यमंत्री माननीया वसुंधरा राजे ने किया।
- **सातवाँ स्वदेशी मेला (23 दिसम्बर से 30 दिसम्बर 2012)** को सम्पन्न हुआ। मेला का उद्‌घाटन राजस्थान की पूर्व मुख्यमंत्री एवं नेता प्रतिपक्ष माननीया वसुंधरा राजे जी द्वारा हुआ।

# देशहित में नहीं एफडीआई

**सरकार दावा कर रही है कि 'वॉलमार्ट' के कारण कृषि उपज को अधिक भाव मिलेंगे और रोजगार के अवसर बढ़ेगे, लेकिन वास्तव में अमेरिका में ही वालमार्ट का विरोध हो रहा है। वहां के नागरिक इस कंपनी के विरोध में सड़क पर उतर आए हैं। – एस. गुरुर्ति**

25 दिसम्बर (नागपुर) रोटरी क्लब ऑफ नागपुर पूर्व और स्वदेशी जागरण मंच के संयुक्त तत्वावधान में उत्तर अंबाझरी मार्ग स्थित मुंडले कनिष्ठ महाविद्यालय में 'खुदरा व्यापार क्षेत्र में विदेशी निवेश' विषय पर आयोजित वाद–विवाद स्पर्धा के समापन समारोह में स्वदेशी जागरण मंच के राष्ट्रीय सहसंयोजक और अर्थशास्त्री एस. गुरुमूर्ति ने कहा – सरकार दावा कर रही है कि 'वॉलमार्ट' के कारण कृषि उपज को अधिक भाव मिलेंगे और रोजगार के अवसर बढ़ेगे, लेकिन वास्तव में अमेरिका में ही वालमार्ट का विरोध हो रहा है। वहां के नागरिक इस कंपनी के विरोध में सड़क पर उतर आए हैं।

उन्होंने कहा कि भारत में जिस दिन (14 सितंबर 2012) को एफडीआई की मंजूरी देने का निर्णय लिया गया, उसी दिन अमेरिका में न्यूयार्क प्रशासन ने 'वॉलमार्ट' को प्रवेश देने का विरोध किया था। कहा गया था कि 'वॉलमार्ट' के कारण छोटे उद्योगों, किसानों का रोजगार चौपट हो जाता है। अमेरिका के प्रसार माध्यमों ने भी विरोध किया था। इससे पूर्व 13 जून 2012 को दस हजार अमेरिकी नागरिकों ने 'वॉलमार्ट' के विरोध में मोर्चा निकाला था। वॉलमार्ट तीन रोजगार बंद करके एक रोजगार पैदा करती है।

उन्होंने कहा कि भारत को विदेशी मुद्रा चाहिए, विदेशी निवेश नहीं। भारत के विभिन्न शहरों में आज भी पारंपरिक उद्योगों में तैयार होने वाली वस्तुएं बड़े पैमाने पर निर्यात की जाती हैं। इसे बढ़ाया जाना चाहिए। अमेरिका वास्तविक कभी नहीं करता।

उन्होंने आंकड़ों के जरिये यह बताने की कोशिश की कि अमेरिका की अर्थव्यवस्था अभी डावांडोल है।

इस कार्यक्रम में स्वदेशी जागरण मंच के महानगर संयोजक अजय पत्की, रोटरी के डिस्ट्रिक्ट गवर्नर संजय मेश्राम, अध्यक्ष कमल टावरी, तरुण भाटिया और अनेक कार्यकर्ता ने भाग लिया। कार्यक्रम का संचालन सुधाकर इंगले ने किया। आभार अजय पत्की ने साथ ही वाद–विवाद स्पर्धा के विजेताओं को गुरुमूर्ति के हाथों पुरस्कार प्रदान किए गए। ❑

## 'स्वावलंबन और एफडीआई' विषय पर जामगर में कार्यक्रम

स्वदेशी जागरण मंच (जामनगर) द्वारा बीते माह आर्थिक स्वावलंबन और एफडीआई का बौद्धिक कार्यक्रम गुजरात के जामनगर शहर में हुआ।

मुख्य वक्ता के रूप मं तंत्रीश्री त्रिलीकभाई ठाकर के द्वारा लोगों को एफडीआई से देश पर पड़ने वाले प्रभाव को बताया गया। कार्यक्रम में स्वदेशी जागरण मंच, जामनगर द्वारा सालभर में हुए कार्यक्रम की सामग्र जानकारी मंच के जिला संयोजक प्रतिकभाई भट्ट के द्वारा दी गई। कार्यक्रम की स्वागतविधि मंच के संयोजक सुधीरभाई रावल के द्वारा की गई। स्वामी नारायण मंदिर के महंत श्री चत्रभुजदासजी के द्वारा आशीर्वचन दिया गया। प्रांत संयोजक रमेशभाई दवे ने युवाओं को संगठित करने और लोगों को जागृत करने को कहा।

आभार वचन किशोरभाई, सह संयोजक दवे ने दिया। सहसंयोजक दिलीपभाई ओझा और महिला संयोजक पूर्वाबन यानरवाणीया के द्वारा कार्यक्रम का संचालन किया गया। इस कार्यक्रम में काफी युवाओं और कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। ❑